ओं श्रीजिनायनमः ।

# अथ श्रीसमयसार नाटक

## बनारसीदासकृत प्रारंभः ।

दोहा--श्रीजिन बचन समुद्रको, कौंलगि होइ बखान ।
रूपचंद तौहू लिखै, अपनी मति अनुमान ॥ १ ॥

कवित्त इकतीसासर्व ह्रस्वाक्षर--करम भरम जग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग शिवमग दरसि । निरखत न-यन भविक जल वरखत, हरखत अमित भविकजनसरसि॥ मदन कदन जित परम धरम हित, सुमिरत भगत भगत सब डरसि । सजल जलद तन मुकुट सपत फन, कमठ दलन जिन नमत बनरसि ॥ १ ॥

सर्व लघु स्वरांत अच्छरयुक्त छप्पय छंद--सकल करमखल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग । धवल परमपद रमन जगत जन अमल कमल खग ॥ परमत जलधर पवन, स-जल घन सम तन समकर । पर अघ रजहर जलद, सकल जन नत भव भय हर ॥ यम दलन नरक पद छय करन, अगम अतट भव जल तरन । वर सबल मदन बन हर दहन, जय जय परम अभय करन ॥ २ ॥

सवैया इकतीसा--जिन्हके बचन उर धारत जुगल नाग, भये धरनिंद पदमावति पलक में । जाके नाम महिमा सों धातु कनक करै, पारस पाषान नामी भयो है खलक में ॥

जिनकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम, अपनो स्वरूपलख्यो भानसो भलक में । तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब दीजे मोहि साता हगलीला के ललक में ॥ ३ ॥

### सिद्ध भगवानकी स्तुति ।

अडिल्ल छंद--अविनाशी अविकार, परम रसधामहैं । समाधान सरवंग, सहज अभिराम हैं । शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंतहैं । जगत शिरोमनि सिद्ध, सदा जयवंतहैं ॥४॥

### साधुरूप भगवानकी स्तुति ।

सवैया इकतीसा--ज्ञान के उजागर सहज सुख सागर, सुगुण रतनागर वैराग रसभस्यो है । सरनकी रीत हरै मरन को भैन करै, करनसों पीठ दे चरण अनुसस्यो है ॥ धरमके मंडन भरमको बिहंडन जु, परम नरम हैके करमसों लस्यो है । ऐसो मुनिराज भुवलोक में बिराजमान, निरखि बनारसी नमस्कार कस्यो है ॥ ५ ॥

### समकितीकी स्तुति ।

सवैया तेईसा--भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट,
चित्त भयो जिम चंदन । केलिकरै शिव मारगमें जगमें
जिनेश्वरके लघुनंदन । सत्य स्वरूप सदा जिन्हके
अवदात मिथ्यात निकंदन । संत दशा तिन्हकी पहिचानि
करै कर जोरि बनारसि वंदन ॥ ६ ॥

सवैया इकतीसा--स्वारथके सांचे परमारथके सांचे चित्त सांचे सांचे बैन कहै सांचे जैनमती हैं । काहूके विरोधी नांहि परजायबुद्धि नांहि, आतम गवेषी न ग्रहस्थहैं न जती हैं ॥ सिद्ध रिद्ध वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा, अंतरकी

च्छसों अजाची लच्छपती हैं ॥ दास भगवन्तके उदास रहै जगतसों, सुखिया सदीव ऐसे जीव समकिती हैं ॥ ७ ॥

सवैया इकतीसा--जाके घट प्रगट विवेक गनधरकोसो, हिरदे हरख महा मोहको हरतु हैं। सांचो सुख मानै निज अडोल जानैं, आपुही में आपनो सुभावले धरतुहैं ॥ जैसे जल कर्दम कतक फल भिन्न करै, तैसे जीव अजीव विलछन करतुहैं । आतम सगति साधे ज्ञानको उदौ आराधे, सोई समकिती भवसागर तरतुहैं ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा--धरम न जानत बखानत भरमरूप, ठौर २ ठानत लराई पच्छपातकी । भूल्यो अभिमानमें न पाउं धरे धरनी में, हिरदे में करनी विचारै उतपातकी ॥ फिरैडावाडोलसों करमके कलोलनमें, वैरही अवस्थासों बघूलाकेसे पातकी । जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुवाती भारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी ॥ ९ ॥

दोहा--वंदो शिव अवगाहना, अरु वंदों शिवपंथ ।
जसु प्रसाद भाषा करो, नाटक नामकग्रंथ ॥ १० ॥

सवैया तेईसा--चेतनरूप अरूप अमूरति सिद्ध समान सदा पद मेरो । मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महातमघेरो ॥ ज्ञानकला उपजी अब मोहि कहों गुन नाटक आगमः केरो । जासु प्रसाद सधै शिवमारग वेग मिटै भव वास वसेरो ॥ ११ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे कोउ मूरख महासमुद्र तरिवे को भुजानिसों उद्यत भयो है तजि नावरो । जैसे गिरिउपरि विरषफल तोरिवेकों बावन पुरुष कोउ उमंग उतावरो। जैसे

जलकुंड में निरख शशि प्रतिबिंबताके गहिवेकों कर नीचो करे डावरो । तैसें मै अलपबुद्धि नाटक आरंभ कीनो गुनी मोहि हसेंगे कहेंगे कोउ बावरो ॥ १२ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे कोउ रतनसों बींध्यो है रतन कोउ, तामें सूत रेशमकी दोरी पोइ गई है। तैसे बुद्धीटीका करीनाटक सुगम कीनो तापरि अलप बुद्धि सुद्धि परिनई है; जैसे काहु देसके पुरुष जैसी भाषा कहे, तैसी तिनहू के बालकनी सिखीलई है । तैसे ज्यों गिरंथको अरथ कह्यो गुरु त्यों हमारी मति कहिवेकों सावधान भई है ॥ १३ ॥

सवैया इकतीसा--कबहों सुमति व्है कुमतिको विनाश करे, कबहों विमल ज्योति अंतर जगति है । कबहों दया व्है चित्त करत दयालरूप, कबहों सुलालसा व्है लोचन लगति है ॥ कबहों कि आरती व्है प्रभु सनमुख आवे, कबहों सुभारती व्है बाहरि वगति है। धरे दसा जैसी तब करे रीति तैसी ऐसी हिरदे हमारे भगवंतकी भगति है॥१४॥

सवैया इकतीसा--मोक्ष चलबेकों सोन करमको करै बोन, जाको रस भौन बुधलौन ज्यों घुलति है । गुनको गिरंथ निरगुनको सुगम पंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलित है ॥ याही के जु पक्षी सो उडत ज्ञान गगनमें, याहीके विपक्षी जग जालमे रुलत है । हाटकसो विमल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हिय फाटक खुलत है ॥ १५ ॥

दोहा--कहों शुद्ध निहचै कथा, कहों शुद्ध विवहार ।
मुक्ति पंथ कारन कहों, अनुभौको अधिकार ॥ १६ ॥
वस्तुविचारत ध्यावतें, मन पावै विश्राम ।

रस स्वादन सुख ऊपजे, अनुभौ याकोनाम ॥ १७ ॥
अनुभौ चिंतामनि रतन, अनुभौ है रसकूप ।
अनुभौ मारग मोच्छको, अनुभौ मोक्षसरूप ॥ १८ ॥

सवैया इकतीसा--अनुभौ के रसकों रसायन कहत जग अनुभौ अभ्यास यहै तीरथकी ठौर है। अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसा सु, अनभौ अधोरसा सु ऊरधकी दौर है ॥ अनुभौ की केली यहै कामधेनु चित्रावेली, अनुभौको स्वाद पंच अमृतकौ कौर है। अनुभौ करम तोरै परमसों प्रीति जोरै अनुभौ समान न धरम कोउ और है ॥ १९ ॥

दोहा--चेतनवंत अनंत गुन, पर्यय सकति अनंत।
अलख अखंडित सर्वगत, जीव दरवविरतंत ॥ २० ॥
फरस वर्न रस गन्धमय, नरद फास संठान ।
अनुरूपी पुद्गल दरब, नभ प्रदेश परवान ॥ २१ ॥
जैसे सलिल समूहमें, करै मीन गति कर्म ।
तैसें पुद्गल जीवको, चलन सहाई धर्म ॥ २२ ॥
ज्यों पंथिक ग्रीसमसमै, बैठे छाया माहिं ।
त्यों अधर्मकी भूमिमें, जड चेतन ठहरांहि ॥ २३ ॥
संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ बास ।
जो भाजन सव जगतको, सोई दरब अकाश ॥ २४ ॥
जो नवकरि जीरनकरै, सकल वस्तुथितिठान ।
परावर्त्तवर्त्तन करै, काल दरब सो जान ॥ २५ ॥
समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास ।
वेदकता चैतन्यता, एसब जीव विलास ॥ २६ ॥
तनता मनता बचनता, जडता जड़ संमेल ।

लघुता गुरुता गमनता, ए अजीवके खेल ॥ २७॥
जो विशुद्धभावनि बधे, अरु ऊरधमुखहोय ।
जो सुखदायक जगतमें, पुण्यपदारथ सोय ॥ २८॥
संकिलेसि भावनिबधे, सहिज अधोमुखहोय ।
दुखदायक संसारमें, पाप पदारथ सोय ॥ २९॥
जोई करमउद्योत धरि, होइ क्रिया रस रत्त ।
करषै नूतन करमकों, सोई आश्रव तत्त ॥ ३०॥
जो उपयोग सरूपधरि, वरतै योग विरत्त ।
रोकै आवत करमकों, सो है संवर तत्त ॥ ३१॥
जो पूरव सत्ता करम, करि थिति पूरणआउ ।
खिरवैकों उद्यत भयो, सो निर्झरा लखाउ ॥ ३२॥
जो नवकर्म पुरानसों, मिलें गंठि दृढ होइ ।
सकति बढावै वंसकी, वंध पदारथ सोइ ॥ ३३ ॥
थिति पूरनकरि जो करम, खिरेवंध पदभानि ।
हंस अंस उज्वलकरै, मोक्ष तत्व सो जानि ॥ ३४॥
भावपदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व ।
द्रविन अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ए सर्व ॥ ३५॥

सवैया इकतीसा--परमपुरुष परमेश्वर परमज्योति, परब्रह्म पूरन परम परधान है । अनादि अनंत अविगत अविनाशि अज, निरदुंद मुकत मुकुंद अमलान है ॥ निराबाध निगम निरंजन निरविकार, निराकर संसार सिरोमनि सुजान है । सरवदरसी सरवज्ञ सिद्ध साईं शिव, धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ॥ ३६ ॥

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार, बुद्धरूप अबुद्ध

अशुद्ध उपयोगी है । चिदरूप स्वयंभू चिन्मूरति धरमवंत, प्रानवंत प्रानिजंतु भूत भवभोगीहै ॥ गुनधारी कलाधारी भेषधारी विद्याधारी, अंगधारीसंघगारी जोगधारी जोगीहै ॥ चिन्मय अखंड हंस अखर आतमराम, करमको करतार परम विजोगी है ॥ ३७ ॥

दोहा--खविहाय अंबर गगन, अन्तरिक्ष जगधाम ।
व्योम वियतनभ मेघपथ, ए अकाशकेनाम ॥ ३८ ॥
यम, कृतांत, अंतक, त्रिदश, आवर्त्ती, मृतथान ।
प्रानहरन, आदित तनय, कालनाम परमान ॥ ३९ ॥
पुन्य सुकृत ऊरधवदन, अकर रोग शुभ कर्म ।
सुखदायक संसार फल, भागवहिर्मुख धर्म ॥ ४० ॥
पाप अधोमुख एन अघ, कंप रोग दुखधाम ।
कलिलकलुषकिलविषदुरित, अशुभकर्मकेनाम ॥ ४१ ॥
सिद्धक्षेत्रत्रिभुवन मुकुट, शिवलग अविचलनाथ ।
मोक्षसुगति वैकुंठ शिव, पंचमगति निरवान ॥ ४२ ॥
प्रज्ञा धिषना से मुखी, धी मेधा मति वुद्धि ।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंसविशुद्धि ॥ ४३ ॥

## अथ विचक्षण पुरुषके नाम ।

दोहा--निपुन विचक्षन विबुध वुध, विद्याधर विद्वान ।
पटु प्रवीनपंडितचतुर, सुधीसुजन मतिमान ॥ ४४ ॥
कलावन्त कोविदकुशल, सुमन दक्ष धीमंत ।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन सन्त ॥ ४५ ॥

## अथ मुनीश्वरके नाम ।

दोहा--मुनि महंत तापस तपी, भिक्षुकचारित धाम ।

यती तपोधन संयमी, व्रतीसाधु रिषिनाम ॥ ४६ ॥
दरस विलोकन देखनो, अवलोकन दृग चाल।
लखन दृष्टिनिरखनभुवन,चितवनचाहनभाल ॥ ४७॥
ज्ञान बोध अवगममनन, जगतभान जगजान।
संयम चारितआचरण, चरन वृत्ति थिरवान ॥ ४८ ॥
सम्यक् सत्य अमोघसत, निसंदेह निरधार ।
ठीकयथारथ उचिततथ, मिथ्या आदिअकार ॥ ४९ ॥
अजथारथमिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक ।
मुधामोघनिष्फलवितथ,अनुचितअसतअठीक॥ ५० ॥

सवैया इकतीसा--जीव निरजीव करता करम पुण्य पाप, आश्रव संवर निरजराबंध मोषहे। सरवविशुद्ध स्यादवाद साधिसाधक दुआसद दुवार धरे समैसार कोष है॥ दरवानुयोग दरवानुयोग दूरिकरै, निगमको नाटक परमरस पोषहै। ऐसो परमागम बनारसी बखाने यामे, ज्ञानको निदान शुद्ध चारित की चोष है ॥ ५१ ॥

दोहा--शोभित निजअनुभूतियुत,चिदानंद भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥ ५२ ॥

सवैया तेईसा--जो अपनी दुति आपु विराजत, है परधान पदारथ नामी। चेतन अंक सदा निकलंक, महासुखसागर को विसरामी ॥ जीव अजीव जिते जगमें, तिनको गुन ग्यायक अंतरजामी। सो शिवरूप वसै शिवथानक, ताहि विलोकनमें शिवगामी ॥ ५३ ॥

सवैया तेईसा—जोग धरै रहै जोगसुं भिन्न अनंत गुनातम केवल ज्ञानी । तासहृदे द्रहसौं निकसी सरिता सम

श्रुत सिंधु समानी ॥ यातैं अनंत नयातम लच्छन, सत्य सरूप सिद्धांत बखानी। बुद्धि लखै न लखै दुरबुद्धि सदा जग मांहि जगै जिनबानी ॥ ५४ ॥

छप्पय छंद—हों निहचैं तिहुंकाल, शुद्ध चेतनमय मूरति। पर परिनति संयोग, भई जडता विस्फूरति ॥ मोह कर्मपर हेतु, पाइ चेतन पर रच्चै। ज्यों धतूर रसपान, करत नर बहु विध नच्चै ॥ अब समय सार वर्णन करत, परम शुद्धता होउ मुझ। अनयास वनारसि दास कहि, मिटो सहज भ्रमकी अरुझ ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा--निहचैमें रूप एक विवहार में अनेक, याही नै विरोध में जगत भरमायो है। जगके विवाद नासिबेकों जिन आगम है, जामें स्यादवाद नाम लक्षन सुहायो है ॥ दरसन मोह जाको गयो है सहजरूप, आगम प्रवान जाके हिरदेमें आयो है। अैसो अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसो पद पूरन तुरत तिन पायो है ॥ ५६ ॥

सवैया तेईसा--ज्यों नर कोउ गिरै गिरसों तिह, सोइ हितू जु गहै दृढ बांही। त्यों बुधकों विवहार भलो तबलों, जबलों शिव प्रापति नांहीं ॥ यद्यपि यों परवान तथापि, सधै परमारथ चेतनमांहीं। जीव अव्यापक है परसों, विवहार सु तौ परकी परछांहीं ॥ ५७ ॥

सवैया इकतीसा--शुद्ध नय निहचै अकेलो आपु चिदानंद- अपनेही गुण परजायकों गहतुहैं। पूरन विज्ञान घन सो है विवहार मांहि, नवतत्त्वरूपी पंच द्रव्यमें रहतु है ॥ पंच द्रव्य नवतत्त्व न्यारे जीव न्यारो लखै। सम्यक दरस यहै

उरतैन गहतु है, सम्यक दरस जोई आतमसरूप सोई ॥ मेरे घट प्रगटयो बनारसी कहतुहै ॥ ५८ ॥

सवैया इकतीसा-जैसै तृनकाठ वांस आरनै इत्यादि और, इंधन अनेक विधि पावक में दहिये। आकृति विलोकत कहावै आगि नानारूप, दीशै एक दाहक सुभाउ जब गहिये ॥ तैसै नव तत्व में भयो है वहु भेखी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये। जाही छिन चेतनाशकतिको विचार कीजै, ताही छिन अलख अभेदरूप लहिये ॥ ५९ ॥

सवैया इकतीसा--जैसै बनवारी में कुधातुके मिलाप हेम, नाना भांति भयो पै तथापि एक नाम है। कसिके कसोटी लीक निरखै सराफ तांही, बानके प्रमान करि लेतु देतु दामहै ॥ तैसैही अनादि पुद्गलसौं संयोगी जीव, नवतत्वरूप में अरूपी महा धाम है,। दीशे उनमानसो उद्योत बान ठौर ठौर, दूसरो न और एक आतमाहि राम है ॥ ६० ॥

सवैया इकतीसा--जैसै रविमंडल के उदै महिमंडल में, आतप अटल तम पटल विलातु है। तैसै परमातमाको अनुभौ रहत जो लौं, तो लौं कहूं दुविधा न कहू पक्षपातु है। नयको न लेश परवानकोन परवेश, निक्षेपके वंसको विधंस होतु जातुहै, जे जे वस्तु साधक हैं तेउ तहां बाधक हैं बाकी रागदोष की दशाकी कौन वातु है ॥ ६१ ॥

अडिल्ल छंद--आदि अंत पूरन सुभाव संयुक्त है, परस्वरूप परजोग कलपना मुक्त है। सदा एकरस प्रगट कही है जैनमें, शुद्ध नयातमवस्तु विराजे वैनमें ॥ ६२ ॥

कवित्त छंद-सतगुरु कहै भव्य जीवनिसौं, तोरहु तुरत

हकी जेल । समकितरूप गहो अपनो गुन, करहु शुद्ध अनुभव को खेल ॥ पुदगल पिंडभाव रागादिक, इनसों नहीं तुमारोमेल । एजड प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोयअरुतेल६३

सवैया इकतीसा--कोउ बुद्धिवंत नर निरखैशरीर घर, भेद ज्ञान दृष्टिसों विचारै वस्तु वासतो। अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भिग्यो चिदानंद लखै वंधमें विलासतो ॥ वंधको विडारि महा मोहको सुभाउ डारि आतमको ध्यान करी देखो परगासतो। करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप अचल अवाधित विलोकै देव सासतो ॥ ६४ ॥

सवैया तेईसा--शुद्ध नयातम आतमकी अनभूति विज्ञान विभूतिहि सोई, वस्तु विचारत एक पदारथ नामक भेद कहावत दोई। यों सरवंग सदा लखि आपुहि, आतमध्यान करै जब कोई ॥ मेटि अशुद्धि बिभावदशा तब सिद्ध सरूप कि प्रापति होई ॥ ६५ ॥

सवैया इकतीसा--अपनेही गुनपरजायसों प्रवाहरूप,परिनयो तिहूं काल अपने आधारसों । अंतर वाहिर परकासवान एकरस, खिन्नता न गहै भिन्न रहै भौ विकारसों ॥ चेतनाके रस सरवंग भरि रह्यो जीव, जैसे लोंन काकर भर्‌यो है रस छारसों ॥ पूरन सरूप अति उज्जल विज्ञान घन, मो कों होहु प्रगट विशेष निरवारसों । ६६ ॥

कवित्त छंद—जहँ ध्रुव धर्म कर्म छय लच्छन, सिद्ध समाधि साध्यपद सोइ । सुधो पयोग योग मांहि मण्डित, साधक ताहि कहै सबकोइ ॥ यों परतच्छ परोक्ष स्वरूप, सुसाधक साध्य अवस्था दोइ । दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवै शिव वंछक थिर होइ ॥ ६७ ॥

कवित्त छंद--दर्शन ज्ञान चरन त्रिगुनातम, समल रूप कहिये विवहार। निहचे दृष्टि एकरस चेतन, भेदरहित अविचल अविकार॥ सम्यक् दशा प्रमाण उभैनय, निर्मलसमल एकही बार। यों समकाल जीवकी परिनति कहें जिनंद गहे गनधार॥ ६८॥

दोहा--एक रूप आतम दरव, ज्ञान चरन दृगतीन।
भेद भाव परिनाम सों, विवहारे सु मलीन॥ ६९॥
यदपि समल विवहारसों, पर्यय शक्ति अनेक।
तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक॥ ७०॥
एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समलविमलन विचारिये, यहेसिद्धिनाहि और॥ ७१॥

सवैया इकतीसा--जाके पद सोहत सुलच्छन अनंत ज्ञान, विमल विकासवंत ज्योति लहलही है। यद्यपि त्रिविध रूप व्यवहार में तथापि, एकता न तजै यों नियत अंग कही है॥ सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करिवे कों मेरी मनसा उमही है। जातें अविचल सिद्धिहोतु और भांति सिद्ध, नांहि नांहि नांहि यामें धोखो नांहिसही है॥ ७२॥

सवैया तेईसा--के अपनो पद आपु सँभारत, के गुरके मुखकी सुनि वानी। भेद विज्ञान जग्यो जिनके प्रगटे सु विवेक कला रज धानी॥ भाव अनंत भये प्रतिविंवित, जीवन मोच्छ दशा ठहरानी। तेनर दर्पनज्यों अविकार रहै थिर रूप सदा सुखदानी॥ ७३॥

सवैया इकतीसा--याही वर्त्तमान समै भव्यनिको मिट्यो मोह, लग्यो है अनादिको पग्यो है कर्म मलसों। उदो करै

भेदज्ञान महाअग्निको निधान, उरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसों ॥ याते थिर रहै अनुभौ विलास गहै फिरि कबहों, अपनपो न कहै पुद्गलसों । यहै करतूतियों जुदाई करै जगतसों, पावकज्यों भिन्न करै कंचन उपलसों ॥७४॥

सवैया इकतीसा--बानारसी कहै भैया भव्य सुनो मेरी शीख, केहू भांति कैसेहू के ऐसो काज कीजिए । एकहू मुहूरत मिथ्यातको विध्वंस होइ, ज्ञानको जगाइ अंस हंस खोजि लीजिये ॥ वाहीको विचार वाको ध्यानयहै कौतुहल, योंही भरि जनम परम रस पीजिए । तजी भववासको विलास सविकासरूप, अंतकरि मोहको अनंतकाल जीजिए॥

सवैया इकतीसा--जाकी देहद्युतिसों दसो दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके हैं । जाको रूप निरखि थकित महारूपवंत, जाकी वपुवाससों सुवास और लुके हैं ॥ जाकी दिव्य धुनी सुनि श्रवनकों सुख होत, जाके तन लछन अनेक आइ ढुके हैं । तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै निरखि सुद्धचेतनसों चुके हैं ॥७६॥

सवैया इकतीसा--जामें बालपनोतरुनपनो वृद्धपनोनांहि, आयु परजंत महा रूप महा बल है । विनाहि जतन जाके तनमें अनेक गुन,अतिसै विराजमान काया निरमलहै ॥ जैसे विनुपवन समुद्र अविचलरूप, तैसे जाको मन अरु आसन अचल है । ऐसो जिनराज जयवंत होउ जगत में, जाकी सुभगति महा सुकृति को फल है ॥ ७७ ॥

दोहा--जिनपद नांहि शरीरकों,जिनपद चेतन मांहि ।
जिन वर्नन कछु और है,यह जिन वर्ननानांहि ॥ ७८ ॥

सवैया इकतीसा--उंचे उंचे गढके कंगुरे यों विराजत हैं, मानो नभ लोक लीलवेकों दांत दियो है। सोहे चिहोंउर उपबनकी सघनताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेरिलियो है ॥ गहरी गंभीर खाईताकी उपमा बनाई, नीचो करि आनन पतालजल पियो है। ऐसो है नगर यामें नृपको न अंगकोउ, योंही चिदानंदसों शरीर भिन्न कियोहै ॥ ७६ ॥

सवैया इकतीसा--जामें लोकालोक के सुभाउ प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान सगति विमल जैसी आरसी। दर्शन उदोत लियो अंतराय अंतकीऊ, गयो महामोह भयो परम महारसी ॥ सन्यासी सहज जोगी जोगसों उदासी जामें, प्रकृति पंचाशी लगि राहि जरिछारसी। सोहै घटमंदिर में चेतन प्रगटरूप, ऐसो जिनराज तांहि वंदतवनारसी॥८०॥

कवित्त छंद--तनु चेतन विवहारएकसें,निहचे भिन्नभिन्न है दोइ। तनुस्तुती विवहार जीव थुति, नियत दृष्टिमिथ्या थुति सोइ ॥ जिनसो जीव जीव सो जिनवर, तनु जिनएक न मानै कोइ। ताकारन तनकी अस्तुतिसों, जिनवर की अस्तुति नहि होइ ॥ ८१ ॥

सवैया तेईसा--ज्यों चिरकाल गडी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूझी। कोउ उखारि धरै महि ऊपरि, जो दृगवंत तिन्है सबसूझी ॥ त्योंयह आतमकी अनुभूति पगी जड भाव अनादि अरूझी। नैजुगतागम साधि कही गुरु, लक्षन वेदि विचक्षन बूझी ॥ ८२ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे कोउ जन गयो धोवी के सदन तिन्ह, पहिस्यो परायो वस्त्र मेरो मानि रह्यो है। धनीदेखि

कह्यो भैया यहु तो हमारो वस्त्र, चीन्हो पहिचानतहीं त्याग भाव लह्यो है ॥ तैसेही अनादि पुद्गलसों संयोगी जीव, संग के ममत्वसों विभावतामें वह्यो है। भेद ज्ञानभयो जब आपो पर जान्यो तब, न्यारो परभाव सों स्वभाव निज गह्यो है ॥ ८३ ॥

अडिल्लछंद--कहै विचच्छण पुरुष सदाहों एकहों। अपने रससों भरयो आपनी टेक हों ॥ मोह कर्म मम नांहि नांहि भ्रम कूप है। शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है॥ ८४ ॥

सवैया इकतीसा--तत्वकी प्रतीति सों लख्यो है निजपर गुन, दृग ज्ञान चरन त्रिविध परिनयो है। विसद विवेक आयो आछो बिसराम पायो, आपही में आपनो सहारो सोधि लयो है ॥ कहत बनारसी गहत पुरुपारथकों, सहज सुभाउसों विभाउ मिटि गयो है। पन्नाके पकाय जैसे कंचन विमल होतु, तैसे शुद्ध चेतन प्रकाशरूप भयो है ॥ ८५ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे कोउ पातर बनाय वस्त्र आभरण, आवति अखारे निशि आडो पट करिके। दुहू उर दीवटि सँवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोगदेखैं दृष्टि धरिके॥ तैसे ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेद करि, उमग्यो प्रकट रह्यो तिहुँलोक भरिके। ऐसो उपदेशसुनि चाहिये जगतजीव शुद्धता सँभारे जगजालसों निकरिके ॥ ८६ ॥

इतिश्रीनाटिकासमयसारकाप्रथमजीवद्वारसमाप्तभया।

# दूसराअध्याय अजीवद्वार ।

दोहा--जीव तत्व अधिकार यह, कह्यो प्रकट समुझाइ ।
अब अधिकार अजीवको,सुनोचतुर मनलाइ ॥८७॥

सवैया इकतीसा--परम प्रतीत उपजाइ गनधर कीसी, अंतर अनादि की विभावता विदारीहै । भेद ज्ञान दृष्टि सों विवेककी सकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है ॥ करमको नास करी अनुभौ अभ्यास धारी, हियेमें हरष निज शुद्धता सँभारी है । अंतराय नास गयो शुद्ध परकास भयो, ज्ञानको बिलास ताकों बंदना हमारी है ॥ ८८ ॥

सवैया इकतीसा-- भैया जगबासीतूं उदासी ह्वैके जगत सों, एक छः महीना उपदेश मेरो मानुरे । और संकलप विकलपके विकार तजि, बैठके एकंतमन एकठौर आनुरे । तेरो घट सर तामें तुंहीहै कमल ताकों, तूंही मधुकरहै सुवास पहिचानुरे । प्रापति न ह्वैहै कछु ऐसो तूं विचारतुहै, सही ह्वैहै प्रापति सरूप याही जानुरे ॥ ८९ ॥

दोहा--चेतनवन्त अनंत गुण, सहित सुआतम राम ।
याते अनमिल और सब, पुद्गलके परिणाम ॥ ९० ॥

कवित्त छंद--जब चेतन सँभारि निज पौरुष, निरखै निज दृगसों निज मर्म । तब सुखरूप विमल अविनाशक जानै जगत शिरोमनि धर्म ॥ अनुभौ करै शुद्ध चेतन को, रमै सुभाव व मै सब कर्म । इहि विधि सधै मुक्तिकोमारग अरु समीप आवै शिव शर्म ॥ ९१ ॥

दोहा--बरनादिक रागादि जड़, रूप हमारो नांहि ।
एक ब्रह्म नाहिं दूसरो, दीसे अनुभव मांहि ॥ ९२ ॥

खांडो कहिये कनकको, कनक म्यान संयोग ।
न्यारो निरखतम्यानसों, लोह कहैं सबलोग ॥ ९३ ॥
वरनादिक पुद्गल दशा, धरैं जीव बहु रूप ।
वस्तु विचारत करमसों, भिन्न एक चिद्रूप ॥ ९४ ॥
ज्यों घट कहिये घीउकों, घटको रूप न घीउ ।
त्यों बरनादिक नामसों, जडतालहै न जीउ ॥ ९५ ॥
निराबाध चेतन अलख, जाने सहज सुकीउ ।
अचलअनादि अनंतनित,प्रकटजगतमेंजीउ ॥ ९६ ॥

सवैया इकतीसा--रूप रसवंत मूरतीक एक पुद्गल, रूप बिन ओर यूं अजीव दर्व दुधा है । च्यारि हैं अमूरतिक जीवभी असर्कय।हित अमूरतिक वस्तु ध्यान मुधाहै।ओरसों न कबहूं प्रगट आपु आपही सों, ऐसो थिर चेतनसुभाउ शुद्ध सुधाहै । चेतनको अनुभौ आराधै जग तेई जीउ, जिन्हके अखंडरस चाखिवेकी छुधा है ॥ ९७ ॥

सवैया तेईसा--चेतन जीव अजीव अचेतन, लच्छन भेद उभै पद न्यारे । सम्यक दृष्टि उद्योत विचक्षण, भिन्न लखै लखिके निरधारे ॥ जे जग मांहि अनादि अखंडित, मोह महामद के मतवारे । ते जड चेतन एक कहै,तिन्हकी फिरि टेक टरै नहिं टारे ॥ ९८ ॥

सवैया तेईसा--या घटमें भ्रमरूप अनादि, बिलास महा अविवेक अखारो । तामँहि उर सरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करै अतिभारो । फेरत भेष दिखावत कौतुक, सो जलिये वरनादि पसारो । मोहसुं भिन्न जुदो जड सों, चिनमूरति नाटक देखनहारो ॥ ९९ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे करवत एक काठ बीचि खंडकरै, जैसे राजहंस निरवारे दूध जलकों । तैसे भेद ज्ञान निज भेदक शकतिसेंति, भिन्न २ करै चिदानन्द पुद्गलकों । अवधि कों ध्यावै मनपर्यै की अवस्था पावै, उमगि के आवै परमावधि के बलकों । याहीभांति पूरनसरूपको उद्योत धरै, करै प्रतिबिंबत पदारथ सकलकों ॥ १०० ॥

इतिश्रीनाटकका दूसरा अजीवद्वारसमाप्तभया ।

## तीसराअध्यायकर्त्ताकर्मक्रियाद्वार ।

दोहा--यह अजीवअधिकारको, प्रगट वखान्योमर्म ।
अब सुनु जीव अजीवके, कर्त्ता किरियकर्म ॥ १०१ ॥

सवैया इकतीसा--प्रथम अज्ञानी जीव कहे मैं सदीव एक दूसरो न और मैंही करता करमको । अंतर विवेक आयो आपापर भेद पायो, भयो बोध गयो मिटी भारतभरमको॥ भासै छहों दरबके गुण परजाय सब, नासै दुःख लख्योमुख पूरन परमको । करमको करतार मान्योपुदगल पिंड, आप करतार भयो आतम धरम को ॥ २ ॥ जाहि समै जीव देह बुद्धिको बिकार तजे, वेदत सरूप निज भेदत भरम को महा परचंड मति मंडन अखंड रस, अनुभौ अभ्यास परकासत परमको॥ ताही समै घटमें न रहै विपरीत भाव, जैसे तम नासै भानु प्रगट धरमको। ऐसी दशा आवै जब साधक कहावैतब, करता ह्वै कैसे करै पुद्गल करमको ॥ ३ ॥

सवैया इकतीसा--जग में अनादि को अज्ञानी कहै मेरो कर्म, करता मैं याको किरियाको प्रतिपाखी है । अंतर सु

मति भासी योगसों भयो उदासी, ममता मिटाय परजाय बुद्धि नाखी है ॥ निरभै सुभाव लीनो अनुभौके रस भीनो, कीनो व्यवहार दृष्टिनिहचैमें राखी है । भरमकी दोरी तोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीतिजोरी करमको साखीहै॥४॥

सवैया इकतीसा--जैसो जो दरब ताके तैसे गुन परजाय, ताहुसों मिलत पेंमिले न काहु आनसों। जीव वस्तु चेतन करम जड जाति भेद, अमिल मिलाप ज्यों नितंब जुरे कानसों ॥ ऐसो सुविवेक जाके हिरदे प्रगट भयो, ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भग्यो भानसों। सोई जीव करम को करतासो दीसेपें अकरता कह्योहै शुद्धता के परवानसों ॥ ५ ॥

छप्पय छंद--जीव ज्ञान गुण सहित, आपगुण परगुण ज्ञायक । आपा परगुन लखै, नांहिं पुद्गल इहिलायक। जीव रूप चिद्रूप, सहज पुद्‌गल अचेत जड, जीव अमूरति मूरतीक पुद्गल अंतर वड ॥ जबलग न होय अनुभव प्रगट तबलग मिथ्या मतिलसै । करतार जीव जड करमको, सुबुधि विकाशक भ्रम नसै ॥ ६ ॥

दोहा--करता परिनामी दरब, करम रूप परिनाम ।
किरिया परजै की फिरन, वस्तु एक त्रयनाम ॥ ७ ॥
कर्त्ता कर्म क्रिया करै, क्रिया कर्म करतार ।
नाउ भेद बहुविधि भयो, वस्तु एक निरधार ॥ ८ ॥
एक कर्म कर्तव्यता, करै न कर्ता दोय ।
दुधा दरब सत्ता सुतो, एकभाव क्यों होय ॥ ९ ॥

सवैया इकतीसा--एक परिनामके न करता दरब दोय, दोय परिनाम एक दर्व न धरतु है । एक करतूति दोय दर्व

कबहूं न करै, दोई करतूति एक दर्व न करतु है ॥ जीव पुद्गल एक खेत अवगाही दोई अपने २ रूप कोउ न टरतु है। जड परिनामनिको करताहै पुद्गल, चिदानन्द चेतन सुभाउ आचरतु है ॥ १० ॥

सवैया इकतीसा--महा ठीठ दुःखको वसीठ पर दर्वरूप अंध कूप काहुपै निवार्‌यो नहि गयो है। ऐसो मिथ्याभाव लग्यो जीवकों अनादिहीको, याही अहंबुद्धि लिये नानाभांति भयो है। काहू समै काहूको मिथ्यात अंधकार भेद, ममता उछेदि शुद्ध भाउ परिनयो है। तिनही विवेक धारि बंधको बिलास डारि, आतम सकतिसों जगतजीति लयो है ॥११॥

सवैया इकतीसा--शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन दुहूको करतार जीव और नहीं मानिये। कर्म पिंडको विलास वर्न रस गंध फास, करता दुहू को पुद्गल पर मानिये ॥ ताते बरनादि गुन ज्ञानावरनादि कर्म, नाना परकार पुद्गल रूप जानिये। समल बिमल परिनाम जे जे चेतन के, ते ते सब अलख पुरुष यों बखानिये ॥ १२ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे गजराज नाज घासके गरासकरि भक्षत सुभाय नहि भिन्न रस लियो है। जैसे मतवारोनहि जानै सिखरनि स्वाद, जुंगमैं मगनकहै गऊ दूध पियोहै ॥ तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञानरूपी है सदीव, पग्यो पाप पुन्य सों सहज सुन्न हियो है। चेतन अचेतन दुहूको मिश्र पिंड लखि, एकमेक मानै न विवेक कछु कियो है ॥ १३ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे महाधूप की तपति में तिसायो मृग, भरमसों मिथ्याजल पीवनकों धायोहै। जैसे अंधमें

मांहि जेवरी निरखि नर, भरमसों डरपी सरप मानि आयो है ॥ अपने सुभाय जैसे सागर सुथिर सदा, पवन संजोग सों उछरि अकुलायो है। तैसे जीव जडजों अव्यापक सहज रूप, भरमसों करमको करता कहायो है ॥ १४ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे राजहंसके वदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो छीर न्यारो नीर है। तैसे समकिती की सुदृष्टिमें सहजरूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोई शरीर है ॥ जब शुद्ध चेतनाको अनुभौ अभ्यासे तब, भासै आपु अचल न दूजो उर सीर है। पूरव करम उदै आइके दिखाई देहि, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे उसनोदकमें उदक सुभाउ सीरो, आगिकी उसनते फरस ज्ञान लखिये। जैसे स्वाद व्यंजन में दीसत विविध रूप, लोनको सवाद खारो जीभ ज्ञान चखिये ॥ तैसे याहि पिंडमें विभावता अज्ञानरूप, ज्ञानरूप जीव भेद ज्ञानसों परखिये। भरमसों करमको करताहै चिदानंद दरव विचार करतार भाव नखियै ॥ १६ ॥

दोहा--ज्ञानभाव ज्ञानी करै, अज्ञानी अज्ञान।
दरब करम पुद्गल करै, यहानिहचै परवान ॥ १७ ॥
ज्ञानसरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और।
दर्व कर्म चेतन करै, यह विवहारी दौर ॥ १८ ॥

सवैया तेईसा--पुदगल कर्म करै नहि जीव कही तुम मैं समुझी नहि तैसी। कौन करै यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी ॥ आपुहि आपु मिलै विछुरै जड क्यों करि मोसन संशय ऐसी। शिष्य संदेह निवारन कारन वात कहै गुरु है कछु जैसी ॥ १९ ॥

दोहा--पुदगल परिनामी दरव, सदा परिनमै सोय ।
याते पुदगल करमको, पुदगल कर्त्ता होय ॥ २० ॥

अडिल छंद--ज्ञानवन्त को भोग निर्जरा हेतु है । अज्ञानीको भोग बंध फल देतु है ॥ यह अचरज की बात हिये नहिं आवही । बूझै कोऊ शिष्य गुरू समुझावही ॥ २१ ॥

सवैया इकतीसा--दया दान पूजादिक विषय कषायादिक दोहू कर्म भोग पै दुहूको एक खेतुहै । ज्ञानीमूढ करम करत दीसे एकसे पै, परिनाम भेद न्यारो २ फल देतु है ॥ ज्ञानवन्त करनी करै पें उदासीन रूप, ममता न धरै ताते निर्जरा को हेतु है । वहे करतूति मूढ करै पै मगन रूप, अंध भयो ममता सो बंध फल लेतु है ॥ २२ ॥

छप्पय छन्द--ज्यों माटीमहि कलस, होनकी शक्ति रहै ध्रुव । दंड चक्र चीवर कुलाल बाहिज निमित्त हुव ॥ त्यों पुदगल परवानु, पुंज बरगना भेष धरि । ज्ञानी बरनादिक सरूप विचरंत विविध परि । बाहिज निमित्त बहिरातमा, गहि संसै अज्ञान मति । जगमांहि अहंकृत भावसों, करम रूप व्है परिनमति ॥ २३ ॥

सवैया तेईसा--जे न करैं नयपक्ष विवाद, धरै न विषाद अलीक न भाखै । जे उदवेग तजै घट अन्तर, शीतलभाव निरन्तर राखै ॥ जेन गुनी गुन भेद विचारत, आकुलता मनकी सब नाखै । ते जगमें धरि आतम ध्यान अखंडित ज्ञान सुधारस चाखै ॥ २४ ॥

सवैया इकतीसा--विवहार दृष्टि सों विलोकत बँध्यो सो दीसे, निहचे निहारत न बांध्यो यह किनही । एकपक्ष बंध्यो

एक पक्ष सों अबंध सदा, दोउ पक्ष अपने अनादि धरे इन ही ॥ कोउ कहै समल विमल रूप कोउ कहै, चिदानन्द तैसोई वखान्यो जैसो जिनही । बंध्यो मानै खुल्यो मानै दुहुनको भेद जानै, सोई ज्ञानवन्त जीवतत्व पायो तिनही २५

सवैया इकतीसा--प्रथम नियत नय दूजो विवहार नय दुहुकों फलावत अनंत भेद फलै है । ज्यों २ नय फलै त्यों त्यों मनके कलोल फलै, चंचल सुभाय लोकालोक लों उछलै हैं । ऐसी नय कक्ष ताको पक्ष तजि ज्ञानी जीव समरसी भये एकतासों नहीं टलै है । महा मोह नासै शुद्ध अनुभौ अभ्यासै निज, बल परगासै सुखरासि माहिं रलै है॥२६॥

सवैया इकतीसा--जैसे काहु बाजीगर चौहटै बजाइ ढोल, नानारूप धरीके भगल विद्या ठानी है । तैसे मैं अनादिको मिथ्यात के तरंगनिसों भरम में धाइ बहुकाइ निजमानी है ॥ अब ज्ञानकला जागी भरमकी दृष्टि भागी, अपनी पराई सबसों जु पहिचानी है । जाके उदै होत परवान ऐसी भांति भई, निहचै हमारी ज्योति सोई हम जानी है ॥२७॥

सवैया इकतीसा--जैसै महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठै, जलकी तरंग जैसे लीनहोइ जलमें । तैसै शुद्ध आतम दरवपरजाय करी, उपजै विनसै थिर रहै निज थल में ॥ ऐसे अविकलपी अजलपी आनंद रूपी, अनादि अनंत गहिलीजे एक पलमें । ताको अनुभव कीजे परम पियूष पीजे, बंधको विलास डारि दीजे पुग्दल में ॥ २८ ॥

सवैया इकतीसा--दरवकी नय परजाय नय दोउ नय,श्रुत ज्ञानरूप श्रुतज्ञान तो परोपहै । शुद्ध परमातमाको अनुभौ

प्रगटतातें,अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोपहै॥अनुभौप्रधान भगवान पुरुष पुरान,ज्ञानऔ विज्ञानघन महा सुख पोपहै॥ परम पवित्र योंही अनुभौ अनंत नाम, अनुभौ विना न कहो और ठोर मोष है॥ २६॥

सवैया इकतीसा—जैसे एक जल नाना रूप दरबानुयोग, भयो बहु भांति पहिचान्यो न परतुहै। फिरि काल पाई दरबानुयोग दूरि होतु, अपने सहज नीचे मारग ढरतु है॥ तैसे यह चेतन पदारथ विभावतासौं, गति योनि भेष भव भावर भरतु है। सम्यक सुभाइ पाइ अनुभौके पंथ धाइ, बंधकी जुगती भानि मुगति करतु है॥ ३०॥

दोहा—निशिदिन मिथ्या भावबहु,धरैमिथ्यातीजीव॥
तातें भावित करमको, करता कह्यो सदीव॥ ३१॥

चौपाई--करै करमसोई करतारा। जोजानैसो जाननहारा॥
जोकर्त्तानहिजानै सोई।जानै सो करतानहिहोई॥३२॥

सोरठा--ज्ञानमिथ्यात न एक, नाहि रागादिक ज्ञानमहि।
ज्ञानकरम अतिरेक, जो ज्ञाता करतानहीं॥३३॥

छप्पय छन्द--करमपिंड अरु राग, भाव मिलि एक होहि नहिं। दोऊ भिन्न स्वरूप, बसहि दोऊ न जीव महि॥ करम पिंड पुदगल बिभाव रागादि मूढ भ्रम। अलख एक पुद्गल अनंत, किम धरहि प्रकृति सम। निज निज विलास युत जगत महि जथा सहज परिनमहि तिम। करतार जीवजड़ ‹रमको, मोहविकल जन कहहि इम॥ ३४॥

छप्पय छंद-जीव मिथ्यात न करै भाव नाहि धरै मल। ज्ञान २ रसरमै, होइ करमादिक पुदगल। असंख्या

परदेश, सकति जगमें प्रगटे अति ॥ चिद विलास गंभीर, धीर थिररहै विमल मति । जब लागि प्रबोध घटमहि उदित तबलग अनय न पेखिये ॥ जिम धरमराज वरतांतपुर, जह तह नीति परोखिये ॥ ३५ ॥

इतिश्री नाटकसमैसार कर्त्ताकर्मक्रियाद्वार तृतीय समाप्तं.

# चौथा अध्याय पापपुन्यद्वार ।

दोहा—करता क्रिया करमको, प्रगट बखान्यो मूल ।
अब बरनौं अधिकार यह, पापपुन्य समतूल ॥ ३६ ॥

कवित्त छंद--जाके उदै होत घटअंतर, बिनसै मोह महा-तम रोक । सुभ अरु अशुभ करमकी दुविधा, मिटे सहज दोसै इकथोक ॥ जाकी कला होतु संपूरन, प्रतिभासै सब लोक अलोक । सो प्रबोध शशि निरखि बनारसि, सीश नमाइ देतु पगधोक ॥ ३७ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन्ह, एक दियो बामन कूं एक घर राख्यो है । बामन कहायो तिन्ह मद्य मांस त्याग कीनो, चंडाल कहायो तिन्ह मद्य मांस चाख्यो है ॥ तैसे एक वेदनी करमके जुगलपुत्र एक पाप एक पुन्य नांउ भिन्न भाख्यो है । दुहों माहिं दोरभप नांउ कर्म बंधरूप, याते ज्ञानवंत ने न कोउ अभिलाख्यो है ॥ ३८ ॥

चौपाई--कोउ शिष्य कहै गुरुपांहीं । पापपुन्य दोउसमनाहीं ॥

कारनरस सुभावफलन्यारोएकअनिष्टलगैइकप्यारे३९

सवैया इकतीसा--संकिलेस परिनामनिसों पाप बंध होइ, विशुद्धसों पुन्य बंधु हेतु भेद मानिये। पापके उदे असाता ताको है कटुक स्वाद,पुन्य उदे सातामिष्ट रसभेद जानिये॥ पाप संकिलेस रूप पुन्यहिं विशुद्ध रूप, दुहूंको सुभाउ भिन्न भेदयों बखानिये। पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगतिहोय, ऐसा फल भेद परतक्ष परवानिये॥ ४०॥

सवैया इकतीसा--पाप बंध पुन्य बंध दुहूमें मुगति नांहि कटुक मधुर स्वाद पुद्गलको पेखिये। संकिलेस विशुद्धि सहज दोउ कर्म चालि, कुगति सुगति जग जालमें विशेखिये॥ कारनादि भेद तोहि सूझत मिथ्यातमांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञानदृष्टिमें न लेखिये। दोउ महा अंधकूप दोउ कर्म बंध रूप, दुहूको विनास मोष मारगमें देखिये॥ ४१॥

सवैया इकतीसा--सीलतप संजम विरति दान पूजादिक, अथवा असंजम कषाय विषै भोग है। कोउ शुभरूप कोउ अशुभ सरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है॥ ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरम में करम त्याग जोग है। भौजल तरैया राग दोषको हरैया महा मोषको करैया एक शुद्ध उपयोग है॥ ४२॥

सवैया इकतीसा–शिष्य कहै स्वामी तुम करनी शुभ ,कीनी है निषिद्ध मेरे संसो मनमांहि है। मोषके सज्ञाता देस विरती मुनीस, तिन्हकी अवस्था तो निराव है॥ कहै गुरु करमको न्यास अनुभौ उन्हहीको उनमांहि है। निरुपाधि आतम

माधि सोइ शिवरूप, और दौर धूप पुदगल परछांहि है॥४३॥

सवैया तेईसा—मोक्षसरूप सदा चिनमूरति बंधमई करतूतिकही है। जावतकाल बसै वह चेतन, तावत सो रसरीति गही है॥ आतम को अनुभव जबलौं, तबलौं शिवरूप दसा निवही है। अंध भयो करनी जब ठानत, बंध विथा तब फैलि रही है॥ ४४॥

सोरठा—अंतर दृष्टि लखाउ, अरु सरूपकोआचरण।
ए परमातम भाउ, शिवकारन एई सदा॥ ४५॥
करम शुभाशुभदोइ, पुद्गलपिंडविभावमल।
इनसों मुगति न होइ, नांही केवल पाइए॥ ४६॥

सवैया इकतीसा--कोउ शिष्य कहै स्वामी अशुभ क्रिया अशुद्ध शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी। गुरु कहै जवलौं क्रियाको परिणाम रहै, तवलौं चपल उपयोग योग धरनी। थिरता न आवै तोलौं शुद्ध अनुभौ न होइ, यातेदोऊ क्रिया मोषपंथ की कतरनी। बंध की करैया दोउ दुहू में न भली कोऊ, बाधक विचार में निषिद्ध कीनी करनी॥ ४७॥

सवैया इकतीसा--मुक्तिके साधककों बाधक करम सब, आतमा अनादि को करम मांहि लुक्यो है। एते परि कहै जो कि पाप बुरो पुण्य भलो, सोइ महामूढ मोक्ष मारगसों चुक्यो है॥ सम्यक् सुभाव लिये हिये में प्रगट्यो ज्ञान, उरध उमँगि चल्यो काहूपे न रुक्यो है। आरसी सो उज्वल बनारसी कहत आपु, कारन सरूपह्वैके कारजकों ढुक्योहै४८

सवैया इकतीसा--जौलौं अष्टकर्मको विनास नाहीं सर्वथा तौलौं अंतरातमा में धारा दोई वरनी। एक ज्ञानधारा एक

शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी ध-रनी। ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्ष की करनहार, दोष की हरनहार भौ समुद्र तरनी। इतनो विशेष जु करम धारा वंधरूप, पराधीन सकति विविधि वंध करनी ॥ ४९ ॥

सवैया इकतीसा--समुझै न ज्ञान कहै करम किये सों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें। ज्ञानपक्ष गहै कहै आतमा अवंध सदा, वरते सुछंद तेउ वूडे हैं चहलमें। जथायोग करम करे पैं ममतान धरै, रहै सावधान ज्ञान ध्यान की टहल में ॥ तेई भवसागर के ऊपर ह्वै तरै जीव जिन्हको, निवास स्यादवादके महल में ॥ ५० ॥

सवैया इकतीसा--जैसे मतवारो कोउ कहै और करै और तैसे मूढ प्राणी विपरीतता धरतु है। अशुभ करमवंध का-रन वखानै मानै, मुगतिके हेतु शुभ रीति आचरतु है ॥ अंतर सुदृष्टि भई मूढता विसरि गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरतु है। करन सों भिन्न रहै आतम आतम सरूप गहै, अनुभौ आरंभि रस कौतुक करतु है ॥ ५१ ॥

इतिश्री नाटक समयसारका पुन्य पाप एकत्वी कथन चतुर्थ द्वार संपूर्णः।

# पंचम अध्याय आश्रव द्वार।

दोहा--पुन्य पापकी एकता, वरनी अगम अनूप।
अवआश्रव अधिकार कछु,कहों अध्यातमरूप ॥५२॥

सवैया इकतीसा--जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज वस करी राखे वल तोरिके। महा

मानी ऐसो आश्रव अगाध जोधो रोपि रनथंभ ठाढो भयो मूछ मोरिके ॥ आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फोरिके। आश्रव पछार्यों रन थंभ तोरि डार्यों ताहि, निरखी वनारसी नमत कर जोरिके५३

सवैया तेइसा--दर्वित आश्राव सो कहिये जहिं पुद्गल जीव प्रदेस गरासै । भावित आश्रव सो कहिए जहिं राग विरोध विमोह विकासै ॥ सम्यक पद्धति सो कहिये जहिं दर्वित भावित आश्रव नासै । ज्ञानकला प्रगटै तिहि थानक अंतर बाहरि और न भासै ॥ ५४ ॥

चौपाई छंद--जो दरवाश्रवरूप न होई । जह भावाश्रव भाव न कोई ॥ जाकी दशा ज्ञानमय लहिये। सो ज्ञातार निराश्रव कहिये ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा--जेते मन गोचर प्रगट वुद्धि पूरवक भाव तिन्हके विनासवेको उद्यम धरतु है। याहि भांति परपरिनतिको पतन करे, मोख को यतन करै भौजल तरतु है। ऐसे ज्ञानवन्तते निराश्रव कहावे सदा, जिन्हको सुजस सुविचक्षण करतु है ॥ ५६ ॥

सवैया इकतीसा--ज्यों जगमें विचरै मतिमंद सुछन्दसदा वरतै वुध तैसे। चंचल चित्त असंजत वैन, शरीर सनेह जथावत जैसे॥ भोग संजोग परिग्रह संग्रह, मोह विलास करै जहाँ ऐसे। पूछत शिष्य आचारजसों, यह सम्यकवन्त निराश्रव कैसे ॥ ५७ ॥

सवैया इकतीसा--पूरव अवस्था जे करमबंध कीने अब, तेई उदै आई नाना भांति रस देत हैं। केई शुभ शाता

केई अशुभ असातारूप, दुहुसों न राग न विरोध सम चेत हैं ॥ यथायोग क्रिया करै फलकी न इच्छा धरै, जीवन मुगतिको विरुद गहिलेत हैं । यातें ज्ञानवंतकों न आश्रव कहत कोउ, मुद्धतासों न्यारे भये सुद्धता समेत हैं ॥ ५८ ॥

दोहा--जो हितभाव सुरागहै, अनहितभाव विरोध ।
भ्रामकभाव विमोहहै, निर्मलभाव सुवोध ॥ ५९ ॥
राग विरोध विमोह मल, एई आश्रव मूल ।
एई कर्म बढाइ के, करै धरमकी भूल ॥ ६० ॥
जहां न रागादिक दसा, सो सम्यक परिनाम ।
यातें सम्यकवंतको, कह्यो निराश्रव नाम ॥ ६१ ॥

सवैया इकतीसा--जे कोई निकट भव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्या मतभेद ज्ञान भाव परिनये हैं। जिन्हकी सुदृष्टिमें न राग दोष मोह कहूं, विमल विलोकनि में तीनो जीति लये हैं ॥ तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलिगये हैं । तेई बंधपद्धति विडारि परसंग डारि आपुमें मगनह्वै के आपुरूप भयेहैं॥६२॥

सवैया इकतीसा--जेते जीव पंडित खयोपशमी उपशमी तिन्हकी अवस्था ज्यों लुहारकी संडासी है । छिन आग मांहि छिन पानिमांहि तैसे एउ छिन में मिथ्यात छिनु ज्ञान कला भासी है ॥ जोलों ज्ञान रहै तोलों सिथिल चरन मोह जैसे कीले नगकी सगति गति नासीहै। आवत मिथ्यात तब नानारूप बंध करै जो उकीले नागकी प्रकृतिपरगासीहै॥६३॥

दोहा--यह निचोर या ग्रंथको, कहै परमरस पोष ।
तजै शुद्ध नयवंध है, गहै शुद्धनय मोष ॥ ६४ ॥

सवैया इकतीसा—करमके चक्रमें फिरत जगवासीजीव ह्वै रह्यो वहिर मुख व्यापत विषमता। अंतर सुमति आई विमल वडाई पाई, पुद्गल सों प्रीति टूटी छूटीमाया ममता॥ शुद्ध नै निवास कीन्हो अनुभौ अभ्यास लीन्हो, भ्रमभाव छांडि दीनो भिनो चित्त समता। अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलम्वी अवलोके राम रमता॥ ६५॥

सवैया इकतीसा—जाके परगास में न दीसे राग दोष मोह आश्रव मिटत नहिं वंधको तरस है। तिहुंकाल जामें प्रतिविंवत अनंतरूप, आपुहू अनंत सत्तानंततें सरस है॥ भाव श्रुत ज्ञान परवान जो विचारि वस्तु, अनुभौ करे जहां न बानीको परस है। अतुल अखंड अविचल अविनासी धाम, चिदानन्द नाम ऐसो सम्यक दरस है॥ ६६॥

इतिश्रीनाटकसमयसारविषेआश्रवद्वारपंचमसंपूर्णम्।

# छठा अध्याय संवरद्वार।

दोहा—आश्रवको अधिकारयह, कह्यो यथावत जेम।
अव संवर वरनन करों, सुनौ भविक धरिप्रेम॥ ६७॥

सवैया इकतीसा--आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसो आश्रव महातम अखंड अंडवत है। ताको विसतार गिलिवे कौं परगट भयो, व्रहमंड को विकासी व्रहमंडवत है॥ जामें सवरूप जो सवमें सवरूप सोपें सबनि सों अलिप्त अकाश खंडवत है। सौहै ज्ञान भानु शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको अमारे दंडवतहै॥ ६८॥

सवैया तेइसा--शुद्ध सुछेद अभेद अबाधित, भेद विज्ञान सु तीछन आरा। अंतर भेद सुभाउ विभाव करे जड़ चेतनरूप दुफारा॥ सो जिन्हके उरमें उपज्यो न रुचै तिन्ह को परसंग सहारा। आतमको अनुभौ करि ते हरखे परखे परमातम धारा॥ ६९॥

सवैया तेइसा--जो कबहूँ यह जीव पदारथ, औसरपाइ मिथ्यात मिटावे। सम्यक धार प्रवाह वहे गुन ज्ञान उदे मुख ऊरध धावे॥ तो अभिअंतर दर्वित भावित कर्म किलेश प्रवेश न पावे। आतम साधि अध्यातम को पथ पूरण व्है परब्रह्म कहावे॥ ७०॥

सवैया तेईसा--भेद मिथ्यात सु बेद महारस भेद विज्ञान कला जिन पाई। जो अपनी महिमा अवधारत, त्यागकरे उरसों ज पराई॥ उद्धतरीति वसे जिनके घट होतु निरंतर ज्योंति सवाई। ते मतिमान सुवर्ण समान लगे तिनकों न शुभाशुभ काई॥ ७१॥

अडिल्ल छंद--भेदज्ञान संवरानिदान निरदोष है। संवरसौं निरजरा अनुक्रम मोष है॥ भेद ज्ञान शिवमूल जगतमाहि मानिये। यदपि हेय है तदपि उपादय जानिये॥ ७२॥

दोहा--भेदज्ञान तबलों भलो, जबलों मुक्ति न होय।
परमज्योतिपरगटजहां, तहांविकल्प न कोय॥ ७३॥

चौपाई--भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो। सो चेतन शिवरूप कहायो॥ भेदज्ञान जिनके घट नाहीं। ते जड जीव बँधे ॥ ७४॥

९ --भेद ज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर।

धोवी अंतर आत्मा, धोवे निज गुन चीर ॥ ७५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे रजसोधा रज सोधके दरब काढ़े, पावक कनक काढ़ी दाहत उपलकों। पंकके गरभमें ज्यौं डारिये कतक फल, नीर करे उज्वल नितारि डारे मलकों ॥ दधिको मथैया मथि काढ़े जैसे माखनकों, राजहंस जैसे दूध पीवे त्यागि जलकों। तैसें ज्ञानवंत भेदज्ञानकी सकति साधि, वेदे निज संपति उछेदे परदल कों ॥ ७६ ॥

छप्पयछंद—प्रगट भेद विज्ञान, आपगुण परगुणजानें। पर परिनत परि त्यागि। शुद्ध अनुभव थित ठानें, करि अनुभव अभ्यास ॥ सहज संवर परगासै, आश्रव द्वार निरोध। कर्म घन तिमर विनासै, छय करि विभाव समभाव भजि। निरविकलपनिज पद गहै, निर्मल विशुद्ध सासुत सुथिर। परम अतिंद्रिय सुख लहैं ॥ ७७ ॥

इति श्री नाटक समयसारका संवर द्वार छठा संपूर्ण.

## सातवां अध्याय निर्जरा द्वार।

दोहा—वरनी संवरकी दसा, जथा जुगति परमान।
मुक्ति वितरनी निर्जरा, सुनहु भविक धरिकान ॥ ७८ ॥

चौपाई—जो संवर पद पाइ अनंदे। जो पूरव कृत कर्म निकंदे ॥ जो अफंद व्है बहुरि न फंदे। सो निरजरा वनारसि वंदे ॥ ७९ ॥

दोहा—महिमा सम्यक् ज्ञानकी, अरु विराग बल जोइ।
क्रिया करत फल भुंजते। करमबंध नहि होइ ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा—जैसे भूप कौतुक सरूप करै नीच कर्म,

कौतुकी कहावै तासों कौन कहै रंक है । जैसे विभचारिनी विचारै विभचार वाको, जारहीसों प्रेम भर तासों चित्त वंक है ॥ जैसे धाइ बालक चुंघाइ करै लालि पालि, जाने तांहि औंर को जदपि वाके अंक हैं । तैसे ज्ञानवंत नानाभांति करतूति ठानै, किरियाकों भिन्न मानै यातें निकलंक है ॥ ८१॥

पुनः—जैसै निशिवासर कमल रहै पंकहिमें, पंकज कहावै पैन याके ढिग पंक है। जैसे मंत्रवादी विषधरसों गहावै गात, मंत्रकी सकति वाके विना विषमंक है॥ जैसै जीभ गहै चिकनाइ रहै रूख अंग, पानी में कनक जैसे कांइसों अटंक है। तैसे ज्ञान वंत नानाभांति करतूति ठानै, किरियाकों भिन्न मानै याते निकलंक है ॥ ८२ ॥

सोरठा—पूर्व उदय संबंध, विषय भोगवै समकिती।
करै न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ८३ ॥

सवैया तेईसा—सम्यकवंत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उभै गुन धारै । जासु प्रभाव लखै निज लक्षन, जीव अजीव दशा निरवारै। आतमको अनुभौ करि व्है थिर ॥ आपु तरै अरु औरनि तारै, साधि सुदर्व लहै शिव समें सुकर्म उपाधि व्यथा वमिझारै ॥ ८४ ॥

सवैया तेईसा—जो नर सम्यकूवंत कहावत, सम्यक ज्ञान कला नहि जागी । आतमअंग अबंध विचारत, धारत संग कहै हम त्यागी ॥ भेष धरै मुनिराज पटंतर, मोह महानल अंतर दागी । सून्य हिये करतूति करै पर सो सठ जीवन होइ विरागी ॥ ८५ ॥

सवैया तेईसा—ग्रंथ रचै चरचै शुभ पंथ लखै जग में

व्यवहार सुपत्ता। साधि सँतोष अराधि निरंजन, देइ सुसीख न लेइ अदत्ता॥ नंग भरंग फिरै तजिसंग छकै सरवंग सुधारस मत्ता। ए करतूति करै सठपै समुझै न अनातम आतम सत्ता॥ ८६॥ ध्यान धरै करि इंद्रिय निग्रह, विग्रहसौं न गिनै निजनत्ता। त्यागि विभूति विभूति मिंटै तनजोग गहै भव भोग विरत्ता॥ मौन रहै लहि मंद कषाय सहै वधबंधन होइ न तत्ता। ए करतूति करै सठपै समुझै न अनातम आतम सत्ता॥ ८७॥

चौपाई—जो विनुज्ञान क्रिया अवगाहै। जेविनु क्रिया मोक्ष पदचाहै॥ जो विनु मोक्ष कहै मैं सुखिया। सो अजान मूढनि में मुखिया॥ ८८॥

सवैया इकतीसा—जगवासी जीवनिसौं गुरु उपदेश कहै, तुम्हें इहांसोवतअनंतकालबीतेहैं। जागो ह्वैसुचेत चित्तसमता समेत सुनो, केवल वचन जामें अक्षरसजीतेहैं। आऊ मेरे निकट वताऊंमें तुह्मारे गुन, परम सुरस भरे करमसों रीते हैं॥ ऐसे वैन कहै गुरु तउ ते न धरैउर, मित्रकैसे पुत्र किधों चित्रके से चीते हैं॥ ८९॥

दोहा—एते पर बहुरौं सुगुरु, बोलै वचन रसाल।
सैन दशा जाग्रत दशा, कहै दुहूंकी चाल॥ ९०॥

सवैया इकतीसा—काया चित्र सारी में करम परजंक भारी, मायाकी सँवारीसेज चादर कलपना। सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिए, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना॥ उदै वलजोर यहै श्वासको सबद घोर, विषै सुख कारजकी दौर यहै सुपना। ऐसी मूढदसामें मगन रहै तिहूकाल, धावै भ्रम जाल में न पावै रूप अपना॥ ९१॥

सवैया इकतीसा—चित्र सारी न्यारी परजंक न्यारो सेज न्यारी, चादर भी न्यारी इहां झूठी मेरी थपना। अतीत अवस्था सैन निद्रा वही कोउ पैन विद्यमान् पलक न यामें अब छपना ॥ श्वास औ सुपनदोउ निद्राकी अलंग बूझे, सूझै सब अंग लखि आतम दरपना । त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागी, भाले दृष्टि खोलि के संभाले रूप अपना ॥ ९२ ॥

दोहा—इहि विधिजे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव ।
जे सोवहि संसार में, ते जगवासी जीव ॥ ९३ ॥

सवैया इकतीसा—जब जीव सोवे तबसमुझे सुपन सत्य, वहि झूठलागै जबजागै नींद खोइके । जागे कहे यह मेरा तन यहमेरी सोंज ताहू झूठमानत मरणथिति जोइके । जाने निज मरम मरन तबसूझै झूठ, बूझै जब और अवतार रूप होइके । बाहु अवतारकी दशामें फिरि यहे पेच, याहि भांति झूठो जग देख्यो हम ढोइके ॥ ९४ ॥

सवैया इकतीसा—पंडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि दुंदज अवस्थाकी अनेकता हरतु है । मतिश्रुत अवधि इत्यादि विकलप मेटी, निरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है ॥ इंद्रियजनित सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमको रूप व्है करम निर्जरतु है । सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि आतम आराधि परमातम करतु है ॥ ९५ ॥

सवैया इकतीसा—जाके उर अंतर निरंतर अनंत दर्व, भाव भासि रहेपें सुभाउ न टरतु है । निर्मलसों निर्मल सुजीवन प्रगट जाके, घटमें अघटरस कौतुक करतु है ॥ जानै

मति श्रुत औधि मनपर्यै केवल सु, पंचधा तरंगनि उमंग उछरतुहै। सोहै ज्ञानउदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमें अनेकता धरतु है॥ ९६॥

सवैया इकतीसा—केई क्रूर कष्ट सहै तपसों शरीर दहै धूम्रपान करै अधोमुख व्हैके झूले है। केई महाव्रत गहै क्रियामें मगन रहै, वहै मुनि भारमें पयार केसे पूले है॥ इत्यादिक जीवनकों सर्वथा मुगति नांहि, फिरे जगमांहि ज्यों बयारके बघूले है। जिनके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरबान, करमके करतार भरम में भूले हैं॥ ९७॥

दोहा—लीन भयो विवहारमें, उकति न उपजै कोइ।
दीन भयो प्रभुपद जपै, मुकति कहांसों होइ॥ ९८॥
प्रभु समरो पूजो पढ़ो, करों बिविध बिवहार।
मोक्ष सरूपी आतमा, ज्ञानगम्य निरधार॥९९॥

सवैया तेईसा—काज बिना न करेजिय उद्यम लाज बिना रनमांहि न झूझै। डील बिना न सधै परमारथ, सील बिना सतसों न अरूझै॥ नेम बिना न लहे निहचे पद प्रेम विना रस रीति न बूझै। ध्यान बिना न थमे मनकीगति, ज्ञान बिना शिवपंथ न सूझै॥ २००॥

सवैया तेईसा—ज्ञान उदै जिनके घट अन्तर, ज्योतिजगी मति होति न मैली। बाहिज दृष्टिमिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यान कलाबिधि फैली॥ जे जड़ चेतन भिन्नलखै सु विवेक लिये परखै गुनथैली। ते जगमें परमारथ जानि गहै रुचि मानि अध्यातम सैली॥ १॥

दोहा—बहुविधि क्रियाकलेससों, शिवपद लहै न कोइ।

ज्ञान कला परकाशसों, सहज मोक्षपद होइ ॥ २ ॥
ज्ञानकला घट घट बसे, योग युगतिके पार ।
निज निज कला उदोत करि, मुक्तहोइ संसार ॥ ३ ॥

कुंडलियाछन्द—अनुभव चिंतामनिरतन, जाके हिय परगास । सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुर्गति वास ॥ दहै चतुर्गतिवास, आसधरि क्रिया न मंडै । नूतन बंध निरोध, पूर्व कृत कर्म विहंडै ॥ ताके न गनु विकार, न गनु वहु भार न गनु भौ । जाके हिरदे मांहि, रतन चिंतामनि अनुभौ ॥ ४ ॥

सवैया इकतीसा—जिनके हियेमें सत्य सूरज उदोत भयो, फेलि मति किरन मिथ्यात तम नष्टहै । जिनकी सुदृष्टिमें न परचै विषमतासों समतासों प्रीति ममतासों लष्ट पुष्टहै ॥ जिन्हके कटाक्षमें सहज मोक्षपथ सधै, साधन निरोध जाके तनको न कष्टहै । तिन्हको करमकी किलोल यहहै समाधि डोले यह जोगासन वोले यह मष्ट है ॥ ५ ॥

सवैया इकतीसा—आतम सुभाउ परभाउकी न सुद्धि ताको, जाको मनमगन परिग्रहमें रह्यो है । ऐसो अविवेक को निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहांलों समुच्चैरूप कह्यो है ॥ अब निज परे भ्रम दूरि करिवेको काजु बहुरो सुगुरु उपदेशको उमह्यो है । परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग कहिवेको उद्यम उदीरि लहलह्यो है ॥ ६ ॥

दोहा—त्याग जोग परवस्तुसव, यह सामान्य विचार ।
विविधवस्तु नाना विरति, यह विशेषविस्तार ॥ ७ ॥

चौपाई—पूरव कर्म उदै रस भुंजे । ज्ञान मगन ममता

न प्रयुंजे ॥ उर में उदासीनता लहिये । यों बुध परिग्रह वंत न कहिये ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा—जे जे मनवंछित विलास भोग जगत् में, तेते विनासिक सब राखे न रहत हैं, । और जे जे भोग अभिलास चित्त परिणाम, तेते विनासीक धर्मरूप ह्वै वहत हैं ॥ एकता न दुहों मांहि ताते वांछा फुरेनाही, ऐसे भ्रम कारजको मूरख वहत हैं । संतत रहे सचेत परसो न करे हेत याते ज्ञानवन्तकों अवंछक कहत हैं ॥ ९ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे फिटकडी लोद्र हरडेकी पुटविना स्वेत वस्त्र डारिये मजीठरङ्ग नीरमें । भीग्योरहै चिरकाल सर्वथा न होइलाल, भेदे नहीं अंतर सपेतीरहे चीर में । तैसे समकितवन्त राग दोष मोह विनु, रहे निशिवासर परिग्रह की भीरमें । पूरव करमहरे नूतन न वंध करे जाचे न जगत् सुख राचे न शरीर में ॥ १० ॥

सवैया इकतीसा—जैसे काहुदेसको वसैया वलवन्त नर, जंगलमें जाइ मधुछत्ताकों गहतु है । वाकों लपटाय चहुं-ओर मधुमक्षिकापै,कंवलीकीओट सोअडंकित रहतु है ॥ तैसे समकिती शिव सत्ताको सरूप साधे, उदेकी उपाधिकों स-माधिसी कहतु हे । पहिरे सहजको सनाह मनमें उछाह, ठाने सुखराह उदवेग न लहतु है ॥ ११ ॥

दोहा—ज्ञानी ज्ञान मगन रहै, रागादिक मल खोइ ।
चित उदास करनीकरे, करम वंध नाहि होइ ॥ १२ ॥
मोह महातम मलहरे, धरे सुमति परगास ।
मुगति पंथ परगटकरे दीपक ज्ञान विलास ॥ १३ ॥

सवैया इकतीसा—जामें धूमको न लेस बातको न परवेस, करम पतंगनिको नाशकरे पलमें । दसाको न भोग न सनेहको संयोग जामें, मोह अंधकारको विजोग जाके थलमें ॥ जामें नतताइ नहीं रागरंक ताइरंच, लह लहे समता समाधिजोग जलमें । ऐसी ज्ञानदीपकी सिखा जगी अभंग रूप, निराधार फुरीपेदुरी है पुदगलमें ॥ १४ ॥

सवैया इकतीसा—जैसोजो दरवतामें तैसोही सुभाउसधे, कोउ दर्व काहुको सुभाउ न गहतु है । जैसे संख उज्वल विविध वर्ण माटीभखे, माटीसो न दीसे नितउज्वल रहतुहै ॥ तैसे ज्ञानवंत नाना भोग परिग्रह जोग, करतविलास न अज्ञानता लहतुहै । ज्ञानकला दूनी होइ दुन्द दसा सूनीहोइ ऊनी होई भौथिति बनारसी कहतुहै ॥ १५ ॥

सवैया इकतीसा—जोलौंज्ञानको उदोत तोलौं नही बंधहोतु, वरते मिथ्याततब नाल्नावंध होहिहै । ऐसोभेद सुनिके लग्योतूं विषै भोगनिसों, जोगनिसों उद्यमकी रीतितें विछेहिहै ॥ सुनो भैया संतत कहे में समकितवंत, यहुतो एकंत परमेसरकी दोहिहै । विषेसों विमुख होइ अनुभो दशा आरोहि, मोषसुख ढोहि ऐसी तोहि मति सोहि है ॥ १६ ॥

चौपाई—ज्ञानकला जिनके घट जागी । ते जगमांहि सहज वैरागी ॥ ज्ञानी मगन विषै सुखमांही । यहु विपरीत संभवे नांही ॥ १७ ॥

दोहा—ज्ञान सहित वैराग्य वल, शिव साधै समकाल ।
ज्यों लोचन न्यारे रहैं, निरखै दोऊ नाल ॥ १८ ॥

चौपाई—मूढ़ कर्मको कर्त्ता होवै । फलअभिलाष धरै फल

जोवै ॥ ज्ञानी क्रिया करै फल सूनी। लगै न लेप निर्जरा दूनी१९

दोहा—बँधे कर्मसों मूढ़ज्यों, पाट कीट तन पेम।
खुलै कर्मसों समकिती, गोरख धंधा जेम ॥ २० ॥

सवैया तेईसा—जे निज पूरबकर्म उदै सुख भुंजतभोग उदास रहैंगे। जे दुख में न विलाप करैं निरबैर हिये तन ताप सहैंगे ॥ है जिनकेदृढ आतम ज्ञान क्रिया करिके फलकों न चहैंगे। ते सुबिचक्षन ज्ञायकहै तिनकों करता हमतो न कहैंगे ॥ २१ ॥

सवैया इकतीसा—जिनकी सुदृष्टिमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिनको आचार सुविचार सुभ ध्यानहै। स्वारथको त्यागी जे लहैंगे परमारथकों, जिनके बनिजमें नफा न है न ज्यानहै ॥ जिनकी समुझमें शरीर ऐसो मानीयतु, धानकोसो छीलक कृपानकोसो म्यानहै। पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके तेई साधु तिनहीको जथारथ ज्ञान है ॥ २२ ॥

सवैया इकतीसा—जमकोसो भ्राता दुःखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहतुहै। सुरग निवासी भूमि वासी औ पतालवासी, सबहीको तन मन कंपत रहतु हैं ॥ उरको उजारो न्यारो देखिये सपत भैसों,डोलतु निशंकभयो आनंद लहतु है। सहज सुबीर जाको सासुतो शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आरज आचारज कहतुहैं ॥ २३ ॥

दोहा—इह भव भय परलोक भय, मरन वेदना जात।
अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥ २४ ॥

सवैया इकतीसा—दसधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति गमन परलोक भय मानिये। प्राननिको हरन मरन भै

कहावै सोई, रोगादिक कष्ट यह वेदना बखानिये॥ रच्छक हमारो कोउ नांहीं अनरच्छा भय, चौरभै विचार अनुगुत मन आनिये। अन चिंत्यो अबाहि अचानक कहांधों होइ, ऐसो भय अकस्मात जगतमें जानिये ॥ २५ ॥

छप्पय छंद—नख शिख मित परवान, ज्ञान अवगाह निरक्खत। आतमअंग अभंग,संग परधनइम अक्खत॥छिनभंगुर संसार, विभव परिवार भारजसु। जहां उतपाति तहां प्रलय, जासु संयोग बिरह तसु॥ परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इह भव भय उपजै न चित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ २६ ॥

छप्पय छंद—ज्ञानचक्र ममलोक, जासु अवलोक मोख सुख। इतरलोक मम नांहि, नाहिं जिसमांहिदोष दुख॥पुन्न सुगति दातार,पाप दुरगति पद दायक। दोखंडित खानिमें, अखंडित है शिवनायक ॥ इह विधि विचार परलोक भय, नहि व्यापक वरतै सुखित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंतनित ॥ २७ ॥

छप्पय छंद—फरस जीभ नाशिका, नैन अरु श्रवन अक्ष इति। मन वच तन बल तीन, सास उस्सास आउ थित॥ए दस प्राणविनाश, ताहि जग मरण कहीजे। ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहु काल न छीजे॥ यह चिंत करत नाहि मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज,ज्ञान रूप निरखंत नित ॥ २८ ॥

छप्पय छंद—वेदनवारो जीव, जांहि वेदंत सोउ जिय। यह वेदना अभंग,सुतो मम अंग नांहि व्यय॥ करम वेदना

द्विविध, एक सुखमय दुतीय दुख । दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिरमुख ॥ जब यह विवेक मनमाहिं धरत, तब न वेदना भय विदित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ २९ ॥

छप्पय छंद—जो स्ववस्तु सत्ता सरूप, जगमहि त्रिकाल गत । तासु विनास न होइ, सहज निहचै प्रमाण मत ॥ सो मम आतम दरव, सरवथा नाहि सहाय धर । तिहिं कारन रक्षक न होइ, भक्षक न कोइपर ॥ जब यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा भय नसित । ज्ञानीनिसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ३० ॥

छप्पयछंद—परमरूप परतक्ष, जासु लक्षन चिन मंडित । पर प्रवेश तहां नांहि, माहिं महि अगम अखंडित ॥ सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अटूट धन । तांहिं चोर किमगहै, ठौर नाहिं लहै और जन ॥ चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब अगुप्तभय उपसमित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञान रूप निरखंत नित ॥ ३१ ॥

छप्पय छंद—शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सु समृद्ध सिद्ध सम । अलख अनादि अनंत अतुल अविचल सरूप मम ॥ चिदविलास परगास, वीत विकलप सुख थानक । जहां दुविधा नहिं कोइ, होइ तहाँ कछु न अचानक ॥ जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात भय नहि उदित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ३२ ॥

छप्पयछंद—जो परगुन त्यागंत, शुद्ध निजगुन गहंतधुव । विमल ज्ञान अंकूर, जासु घट महि प्रकास हुव ॥ जो पूरव

कृतकर्म, निर्जराधार वहावत। जो नव बंध निरोध, मोष मारग मुख धावत ॥ निःसंकतादि जस अष्टगुन, अष्टकर्म अरि संहरत। सो पुरुष विचच्छण तासु पद, बनारसी वन्दन करत ॥ ३३ ॥

सोरठा—प्रथम निसंसै जानि, दुतिय अवंछितपरिनमन।
तृतिय अंग अगिलानि, निर्मलदृष्टिचतुर्थगुन ॥ ३४ ॥
पंचअकथपरदोष, थिरीकरन छट्ठमसहज।
सत्तम वच्छलपोष, अट्ठम अंङ्ग प्रभावना ॥ ३५ ॥

सवैया इकतीसा—धर्मसें न संसै शुभकर्म फलकी न इच्छा अशुभ कों देखि न गिलानि आनै चित्त में। सांचि दृष्टिराखै काहू प्रानीको न दोष भाखै, चंचलता भानि थिति वोघटानै चित्त में ॥ प्यारे निजरूपसों उछाहके तरंग उठे, एइआठो अंग जब जागे समकितमें। ताहि समकितकों धरेसो समकित वंत, वहे मोखपोव उन आवै फिर इत में ॥ ३६ ॥

सवैया इकतीसा—पूर्व बंध नासे सोतो संगित कला प्रकाशे, नव बंध रुंधी ताल तोरन उछरिके। निसंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरी, समता अलाप चारि करे सुख भरिके ॥ निरजरा नादगाजे ध्यान मिरदिंग बाजे, छक्यो महानंद में समाधि रीझि करिके। सत्तारंग भूमि में मुकत भयो तिहूंकाल, नाचे शुद्ध दृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ३७ ॥

इतिश्रीसमयसारनाटकविषेनिर्जराद्वारसप्तमसंपूर्ण।

# ८ अध्याय बंधद्वार।

दोहा—कही निर्जरा की कथा, शिवपथ साधनहार।
अब कछु बंध प्रबंधको, कहूं अल्प विस्तार॥ ३८॥

सवैया इकतीसा—मोह मद पाइ जिन संसारी विकल कीने, याहिते अजानु वाहुविरद वहतु है। ऐसो वंधवीर विकराल महाजाल सम, ज्ञानमंद करे चंदराहु ज्यों गहतु है॥ ताको वल भंजिवेकों घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उद्देस महतु है। सो है समकित सूर आनंद अंकूर ताही, निरखि बनारसी नमो नमो कहतु है॥ ३९॥

सवैया इकतीसा—जहां परमातम कलाको परगास तहां, धरम धरामें सत्य सूरजको धूपहै। जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां, मोहके विलासमें महाअंधेर कूप है॥ फेळी फिरै छटासी घटासी घटघनवीच, चेतनकी चेतना दुहोंधागुपचूप है। बुद्धिसों न गहीजाय वेनसों न कहीजाय पानीकी तरंग जैसे पानीमें गुडूप है॥ ४०॥

सवैया इकतीसा—कर्मजाल वर्गनासों जगमें न वंधे जीव, वंधे न कदापिमन वच काय जोगसों। चेतन अचेतन की हिंसासों न वंधेजीव, वंधे न अलख पंचविषे विखरोगसों॥ कर्मसों अवंध सिद्ध जोगसों अवंध जिन हिंसासों अवंध साधु ज्ञाता विषे भोगसों। इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न वंधे जीव, वंधे एक रागादि अशुद्ध उपजोगसों॥ ४१॥

सवैया इकतीसा—कर्मजाल वर्गनाको वास लोकाकाश माहिं, मनवच कायको निवास गति आउमें। चेतन अ-

चेतनकी हिंसावसै पुद्गलमें, बिषेभोग वरते उदैके उरझाउ में ॥ रागादिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकी यहै उपादान हेतु बंधके बढाउमें। याहिते बिचक्षन अबंध कह्यो तिहूँ काल, रागदोष मोहनादि सम्यक् सुभाउ में ॥ ४२ ॥

सवैया इकतीसा—कर्मजाल जोग हिंसा भोगसों न बंधे पै तथापि ज्ञाता उद्यमीबखान्यो जिन बैनमें । ज्ञानदृष्टि देतु विषै भोगनिसों हेतु दोउ, क्रियाएकखेत यों तौ बनै नांहि जैनमें ॥ उदैबल उद्यम गहै पै फलकौं न चहे निरदै दसा न होई हिरदेके नैनमें । आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यात मांहि, जहां न संभरे जीव मोहनींद सैनमें ॥ ४३ ॥

दोहा—जब जाकों जैसे उदै, तबसोहै तिहि थान ।
सकति मरोरै जीवकी, उदै महा बलवान ॥ ४४ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे गजराज पर्यो कर्दमके कुंडबीच उद्यम अहूटै नपै छूटै दुःख दंदसें। । जैसे लोह कंटककी कोरसों उरझ्यो मीन, चेतन असाता लहै सातालहै संदसों ॥ जैसे महाताप सिरवाहिसों गरास्यो नर, तकै निजकाज उठी सकै न सुछंदसों । तैसे ज्ञानवंत सब जानै न बसाई कछु, बंध्यो फिरैपूरब करमफल फंदसों॥४५॥

चौपाई—जे जिय मोहनींदमें सोवै, ते आलसी निरुद्यमि होवै ॥ दृष्टिखो लिज जगे प्रवीना । तिन्हि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ४६ ॥

सवैया इकतीसा—काच बांधे सिरसों सुमनी बांधैं पायनिसों, जानै न गंवारकैसी मनी कैसो काच है । योंहीमूढ़ जूठमें

मगन जूठहिकों दौरे, जूठ बात माने पै न जानै कहा साच है ॥ मनीको परखि जानै जोहरी जगत् मांहि, साचकी समुझी ज्ञान लोचनकी जाच है, जहांको जु वासीसो तो तहांको मरम जानै, जाको जैसो स्वांग ताको तैसरूप नाच है ॥ ४७ ॥

दोहा—बंध बंधावे अंध व्है, ते आलसी अजान ।
मुक्ति हेतु करनी करैं, ते नर उद्यमवान ॥ ४८ ॥

सवैया इकतीसा—जवलगु जीव शुद्ध वस्तुको विचारे ध्यावै तवलगु भोगसों उदासी सरवंग है । भोगमें मगन तव ज्ञानकी जगन नाहिं, भोग अभिलापकी दशा मिथ्यात अंग है ॥ ताते विषै भोगमें मगन सो मिथ्याति जीव, भोग सों उदासि सो समकिति अभंग है । ऐसी जानि भोगसों उदासि व्है मुगति साधै, यहै मन चंग तो कठोत मांहि गंग है ॥ ४९ ॥

दोहा—धरम अरथ अरु काम शिव, पुरुषारथ चतुरंग ।
कुधी कलपना गहि रहै, सुधी गहै सरवंग ॥ ५० ॥

सवैया इकतीसा—कुलको आचार ताहि मूरख धरम कहै पंडित धरम कहै वस्तुके सुभाउको । खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथकहै, ज्ञानीकहै अरथ दरव दरसाउको ॥ दंपति को भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहै, सुधी काम कहै अभिलाप चित आउको, इन्द्रलोक थानको अजानलोक कहै मोक्ष, मतिमान मोक्ष कहै बंधके अभाउको ॥ ५१ ॥

सवैया इकतीसा—धरमको साधन जु वस्तुको सुभाउ साधै, अरथको साधन विलेछ दर्व पटमें । यहै काम साधना जु संगहै निरास पद, सहज स्वरूप मोख सुद्धता प्रगटमें ॥ अंतर सु-

दृष्टिसों निरंतर विलोकै वुध, धरम अरथ काम मोक्ष निजघटमें । साधन आराधनकी सौंज रहै जाके संग, भूलो फिरै मूरख मिथ्यातकी अलटमें ॥ ५२ ॥

सवैया इकतीसा—तिहूं लोकमांहि तिहूं काल सब जीवनिकों, पूरब करम उदै आइ रस देतुहैं । कोउ दीरघाउ धरै कोउ अलपाउ मरै, कोउ दुखी कोउ सुखी कोउ समचेतहै ॥ याहीमें जीवायो याही मान्यो याहि सुखी कन्यो दुखी कन्वो एसी मूढ़ आपु मानी लेतु है । याही अहं बुद्धिसों न विलसै भरम मूल यहै मिथ्या धरम करम बंध हेतुहै ॥ ५३ ॥

सवैया इकतीसा—जहांलों जगतके निवासी जीव जगतमें, सबै असहाय कोऊ काहुको न धनीहै । जैसी२ पूरब करमसत्ता बांधिजिन, तैसी तैसी उदै में अवस्था आइ वनी है ॥ एते परि जो कोउ कहै कि मैं जीवावोंमारों इत्यादि अनेक विकलप बात घनी है । सोतो अहं बुद्धिसों विकल भयो तिहूंकाल, डोले निज आतम सकति तिन हनी है ॥ ५४ ॥

सवैया इकतीसा—उत्तम पुरुषकी दशा ज्यों किसमिस दाख, बाहिज अभिंतर बिरागी मृदु अंग है । मध्यम पुरुष नारियरकेसी भांति लिये, वाहिज कठिन हिय कोमल तरंग है ॥ अधम पुरुष बदरीफल समान जाके वाहिरसों दिसै नरमाइ दिल संगहै । अधमसों अधम पुरुष पुंगीफल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरबंग है ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—कीच सो कनक जाके नीचसो नरेशपद, मीचसी मिताई गरवाई जाके गारसी । जहरसी जोग जानि कहरसी करामाति, हहरसीहौंस पुद्गल छबि छारसी । आलसो

जग बिलास भालसो भुवनवास,काल सो कुटंब काज लोक लाज लारसी। सीठ सो सुजस जानै बीठसोबखत मानै, ऐसी जाकी रीति ताहि बंदत बनारसी॥ ५६॥

सवैया इकतीसा—जैसे कोउ सुभट सुभाय ठग सूर-खाय, चेरा भयो ठगनीके घेरामें रहतु है। ठगोरी उ-तरिगई तबतांहि सुधिभई, पर्‌यो परवस नाना संकट सहतु है॥ तैसेही अनादिको मिथ्याति जीव जगतमें, डोलै आठौं जाम विसराम न गहतुहै। ज्ञान कला भासी भयो अंतर उदासी पै तथापि उदै व्याधिसों समाधि न स-हतु है॥ ५७॥

सवैया इकतीसा—जैसें रांक पुरुषके भाये कानी कोड़ी धन, उलूवाके भाय जैसे संझाई विहान है। कूकरके भाये ज्यों पिडोर जिरवानी मठा, सूकरके भाय ज्यों पुरीष पकवानहै॥ वायसके भाये जैसे नींदकी निवोरी दाख, वालकके भाये दंत कथाज्यों पुरानहे। हिंसकके भाये जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके भाये सुभ बंध निरवानहै॥ ५८॥

सवैया इकतीसा—कुंजरकों देखि जैसे रोष करी भुंसे स्वान, रोष करै निर्धन विलोकि धनवंतकों। रैनके जगैयाकों वि-लोकि चोर रोष करै, मिथ्यमति रोषकरै सुनत सिद्धंतको॥ हं-सकों बिलोकि जैसे काग मनि रोष करे, अभिमानी रोष करै देखत महंतकों। सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोष करै, त्योंहीं दुरजन रोष करै देखि संतकों॥ ५९॥

सवैया इकतीसा—सरलकों सठ कहै बकताकों धीठ कहै, बिनो करै तासों कहै धनको अधीनहै। छमीको निवल कहै

दर्सीकों अदर्सी कहै, मधुर वचन बोलै तासोंकहै दीनहै ॥ धरमीकों दंभी निसपृहीकों गुमानी कहै, तिशना घटावै तासों कहै भागहीन है । जहां साधु गुण देखै तिन्हकों लगावै दोष, ऐसो कछु दुर्जनको हिरदो मलीनहै ॥ ६० ॥

चौपाई—में करता में कीन्ही कैसी । अब यों करों कहौ जो ऐसी ॥ ए विपरीत भाव है जामें । सो बरतै मिथ्यात दसा में ॥ ६१ ॥

दोहा—अहंबुद्धि मिथ्यादसा, धरै सु मिथ्यावन्त ।
विकल भयो संसार में, करै विलाप अनन्त ॥ ६२ ॥

सवैया इकतीसा—रविके उदोत अस्त होत दिन २ प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यों जीवन घटतु है । कालके ग्रसत छिन छिन होत छीन तन, और के चलत मानो काठसो कटतु है ॥ एते परि मूरख न खोजै परमारथकों, स्वारथ के हेतु भ्रम भारत ठटतुहै । लग्यो फिरै लोगनिसों पग्यो परिजोगनिसों, विषे रसभोगनिसों नेकु न हटतु है ॥ ६३ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे मृग मत्त वृषादित्य की तपति मांहि, तृषावन्त मृषा जल कारण अटतु है । तैसे भववासी मायाही सों हित मानि मानि, ठानि ठानि भ्रम भूमि नाटक नटतुहै ॥ आगेकों ढुकत धायपाछे बछरा चराय, जैसे दृगहीन नर जेवरी वटतु है । तैसे मूढ़ चेतन सुकृत करतूति करै, रोवत हसतफल खोवत खटतु है ॥ ६४ ॥

सवैया इकतीसा—लिये दृढ़ पेच फिरै लोटन कबूतर सो उलटो अनादि को न कहो सु लटतु है । जाको फल दुःख ताही साता सो कहत सुख, सहित लपेटी असी धारासी

चटतु है ॥ ऐसे मूढ़ जन निज संपती न लखे क्योंही, मेरी मेरी मेरी निशि बासर रटतु है । याही ममता सों परमारथ बिनसी जाइ, कांजी को फरस पाई दूध ज्यों फटतु है ॥ ६५ ॥

सवैया इकतीसा—रूपकी न झांक हिये करम को डांक पिये, ज्ञान दबि रह्यो मिरगांक जैसे घन में । लोचन की ढांक सों न मानै सदगुरु हांक, डोलै पराधीन मूढ़ रांक तिहूं पन में ॥ टांक इक मांस की डलीसी तामें तीन फांक, तीनि को सो अंक लिखि राख्यों काहु तन में । तासों कहै नांक ताके राखिबेको करे कांक, लांकसो खरग बांधि वांक धरे मनमें ॥ ६६ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे कोउ कूकर क्षुधित सूके हाडचावे हाडनिकी कोर चिहू ओर चुभे मुख में । गाल तालू रस मांस मूढ़निको मांस फाटे, चाटै निज रुधिर मगन स्वाद सुख में ॥ तैसे मूढ़ बिसयी पुरुष रति रीत ठाने तामें चित साने हित माने खेद दुख में । देखै परतक्ष बल हानी मलमूतखानी, गहे न गिलानी पगी रहे रागरुख में ॥ ६७ ॥

अडिल्ल छंद—सदा करमसों भिन्न सहज चेतन कह्यो । मोह विकलता मानि मिथ्याती ह्वै रह्यो । करै विकल्प अनन्त, अहंमति धारिके । सो मुनि जो थिर होइ ममत्त निवारि के ॥ ६८ ॥

सवैया इकतीसा—असंख्यात लोक परवान जो मिथ्यात भाव, तेई व्यवहार भाव केवली उकत है । जिन्ह के मिथ्यात गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन विवहार

सों मुकतहै ॥ निर विकलप निरुपाधि आतमा समाधि, साधि जे सगुन मोक्षपंथकों दुकतहै । तेई जीव परमदशा में थिररूपह्वैके, धरममें दुकेन करमसों रुकत हैं ॥६९॥

कवित्तछंद—जे जे मोह करमकी परिनति, बंध निदान कही तुम सब्ब । संतत भिन्न शुद्ध चेतन सों, तिन्हि को मूल हेतु कहु अब्ब ॥ कै यह सहज जीव को कौतुक, कै निमित्तहै पुद्गल दव्व । सीस नवाइ शिष्य इमपूछत, कहै सुगुरु उत्तर सुनु भव्व ॥७०॥

सवैया इकतीसा—जैसे नानावरन पुरी बनाइदीजे हेठि उज्जल विमल मनु सूरज करांति है । उज्जलता भासै जब वस्तुको विचार कीजे, पुरीकी झलकसों वरन भांति भांति है ॥ तैसे जीव दरवको पुग्गल निमित्त रूप, ताकी ममतासो मोह मदिराकी मांति है । भेद ज्ञान दृष्टिसों सुभाव साधि लीजे तहां, साचि शुद्ध चेतना अवाची सुख शांति है ॥ ७१ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे महिमंडलमें नदीको प्रवाह एक, ताहीमें अनेक भांति नीरकी ढरनि है । पाथरको जोर तहां धारकी मरोरि होति, कांकरिकी खानि तहां झागकी झरनि है ॥ पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग उठे, भूमि-की निचानि तहां भौरकी परनि है । तैसे एक आतमा अनंत रस पुद्गल, दुहूकी संयोगमें विभावकी भरनि है॥७२॥

दोहा—चेतन लक्षन आतमा, जडलक्षन तन जाल ।
तनकी ममता त्यागिके, लीजें चेतन चाल ॥७३॥

सवैया तेईसा—जो जगकी करनी सब ठानत, जो जग

जानत जोवत जोई । देह प्रमान पै देहसुँ दूसरो, देह अ-
चेतन चेतन सोई ॥ देह धरैप्रभु देहसुँ भिन्न, रहे परछन्न
लखै नहि कोई । लक्षन वेदि विचक्षन बूझत, अक्षनिसों
परतक्ष न होई ॥ ७४ ॥

सवैया तेईसा—देह अचेतन प्रेत दरी रज, रेतभरी मल
खेतकी क्यारी । व्याधि की पोट अराधिकी ओट उपाधि
की जोट समाधिसों न्यारी ॥ रेजिय देह करै सुख हानि
इते परि तोहि तु लागत प्यारी । देहतु तोहि तजगि नि-
दान पि, तूंहि तजे क्युं न देहकि यारी ॥ ७५ ॥

दोहा—सुनु प्रानी सदगुरु कहैं, देह खेहकी खानि ।
धरै सहज दुख दोषकों, करै मोक्षकी हानि ॥ ७६ ॥

सवैया इकतीसा—रेतकीसी गढ़ी किधौं मढ़ी है मसान के-
सी, अंदर अंधेरीजैसी कंदरा है सैलकी । ऊपरकी चमक दम-
क पट भूखनकी, धोखे लागे भली जैसी कली है कनेलकी ॥
औगुनकी ओंडी महा भोंडी मोहकी कनोंडी, मायाकी
मसूरतिहै मूरतिहै मैलकी । ऐसी देह याहिके सनेह याकी
संगतिसों, व्है रही हमारी मति कोलू केसे बैलकी ॥७७॥

सवैया इकतीसा—ठौर ठौर रकतके कुंड केसनिके झूंड,
हाड़निसों भरी जैसे थरी है चुरैलकी । थोरे से धकाके
लगे ऐसे फटजाय मानो,कागदकी पुरी किधौं चादरहै चैल
की ॥ सूचै भ्रमा वानि ठानि मूढ़निसों पहिचानि,करै सुख
हानि असखानि वदफैलकी । ऐसी देह याहिके सनेह याकी
संगतिसों, व्हैरही हमारी मति कोलू केसे बैलकी ॥ ७८ ॥

सवैया इकतीसा—पाटी बंधे लोचनसों संकुचे दबोचनिसों,

कोचनिकोसोच सोनिवेदे खेदतनको। धाइवोही धंधाअरु कं-धामाहि लग्योजोत,वारवार आरसहै कायरहै मनको॥ भूख-सहे प्याससहे दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न गहे न उसा स लहे छिनको। पराधीन घूमै जैसा कोल्हुको कमेरो बैल,तै सोइ स्वभाव भैया जगवासी जनको ॥ ७९ ॥

सवैया इकतीसा—जगतमें डोले जगवासी नर रूप धरी, प्रेतकैसे दीप किधो रेत केसे धुहे है। दीसे पटभूखन आ-डंवरसों निके फिर फीके छिनमांझि सांझी अंवर ज्यों सु-हेहै ॥ मोहके अनल दगे मायाकी मनीसोंपगे,दाभकी अ-नीसों लगे ऊसकेसे फुहे है, धरमकी वुझि नाही उरझे भरम माही.नाचि नाचि मरजाहि मरीकेसे चुहेहै ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा—जासों तूं कहत यह संपदा हमारीसो-तो, साधनि अडारी ऐसे जैसे नाक सिनकी । जासों तूं कहत हम पुन्य जोग पाई सोतो, नरककी साई है बडाई देढ दिनकी ॥ घेरा मांहि पर्योतूं विचारै सुख आखिन्हि को, माखिनके चूंटत मिठाई जैसे भिनकी । एते परि हो-हि न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता एक छिनकी ॥ ८१ ॥

दोहा—यह जगवासी यहजगत,इनसों तोहि न काज।
तेरे घटमें जग वसै, तामें तेरो राज ॥ ८२॥

सवैया इकतीसा—याही नर पिंडमें विराजे त्रिभुवन थि-ति, याहिमें त्रिविध परिणाम रूप शृष्टि है । याहिमें कर-मकी उपाधि दुःख दावानल, याहिमें समाधि सुख वारिद की वृष्टि है ॥ यामें करतार करतूति याहि में विभूति, या

में भोग याहीं में वियोग यामें घृष्टि है । याहि में विलास सब गर्भित गुपतरूप, ताहिकों प्रगट जाके अंतर सुदृष्टि है ॥ ८३ ॥

सवैया तेईसा—रे रुचिवंत पचारि कहै गुरु, तूं अपनो पद बूझत नांही । खोज हिये निज चेतन लक्षन है निज में निज गूझत नांही ॥ सिद्ध सुछंद सदा अति उज्जल, मायके फंद अरूझत नांहीं । तोर सरूप न दुंदकि दोहिमें तोहिमें है तुहि सूझत नांही ॥ ८४ ॥

सवैया तेईसा—केइ उदासरहै प्रभु कारन, केइ कहीं उठि जाहि कहींके । केइ प्रनाम करें गढि मूरति, केइ पहार चढे चढि छींके ॥ केइ कहे असमान कें ऊपरि, केइ कहे प्रभु हेठि जमीके । मेरो धनी नहि दूरदिशांतर, मोमहि है मुहि सूझतनीके ॥ ८५ ॥

दोहा—कहै सुगुरु जो समकिती, परमउदासी होइ ।
सुथिर चित्त अनुभौ करै, यहपद परसे सोइ ॥ ८६ ॥

सवैयाइकतीसा—छिनमें प्रवीन छिनहीं में मायासों मलीन, छिनकमें दीन छिनमांहि जैसो शक्रहै । लिये दोर धूप छिन छिनमें अनंतरूप, कोलाहल ठानत मथानकोसो तक्र है ॥ नट कोसो थार किधों हारहै रहटकोसो, नदी कोसो भौंर कि कुंभारकोसो चक्रहै । ऐसो मन भ्रामक सुथिरआजु केसोहोइ, औरहिको चंचल अनादिहीको वक्रहै ॥ ८७ ॥

सवैया इकतीसा—धायो सदा कालपै न पायो कहूं सांचोसुख, रूपसों विमुख दुख कूपवास वसाहै । धरमको घाती अधरमकोसँघाती महा, कुराफाती जाकी सन्निपाती

कीसी दसा है ॥ माया कों झपटि गहै कायासों लपटि रहै, भूल्यो भ्रम भीर में बहीर कोसो ससा है। ऐसो मन चंचल पताका केसो अंचल. सु ज्ञानके जगे सें निरवानपथ धसा है ॥ ८८ ॥

दोहा—जो मन विषय कषायमें, वरते चंचल सोइ ।
जोमनध्यान विचारसों, रुकेसुअविचलहोइ ॥ ८९ ॥
ताते विषय कषायसों, फेरि सुमनकी वानि ।
शुद्धातम अनुभो विषे,कीजे अविचल आनि ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसा—अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज,निराधार निगम निरंजन निरंधहै। नानारूप भेष धरे भेषको न लेसधरे, चेतन प्रदेसधरे चेतनाको षंधहै ॥ मोहधरे मोहीसोविराजे तोमें तोहीसो,न तोहिसो न मोहीसो निरागी निरवंधहै। ऐसो चिदानंद याही घटमें निकट तेरे, ताही तूं विचार मन और सर्व धंधहै ॥ ९१ ॥

सवैया इकतीसा—प्रथम सु दृष्टिसों सरीररूप कीजे भिन्न तामै और सूछम शरीर भिन्न मानियें। अष्ट कर्मभावकी उपाधि सोई किजे भिन्न ताहुमें सुबुद्धिको बिलास भिन्न जानिये ॥ तामें प्रभु चेतन विराजित अखंडरूप, वहै श्रुत ज्ञान के प्रवान ठीक आनिये। वाहिको बिचार करि वाहिमें गमन हुजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि ठानिये ॥ ९२॥

चोपाई—इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने। रागादिक निजरूप न माने ॥ तातें ज्ञानवंत जगमांही। करम वंधको करता नाहीं ॥ ९३ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञानी भेद ज्ञानसों विलेछि पुदगलकर्म,

आतमाके धर्मसों निरालोकरि मानतो । ताको मूल कारण अशुद्ध रागभाव ताके, नासिबेको शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो ॥ याही अनुक्रम पररूप भिन्न बंध त्यागि, आपु मांहि अपनो सुभाव गहि आनतो । साधि शिवचाल निरबंध होहु तिहू काल, केवल विलोकि पाई लोका लोक जानतो ॥ ९४ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे कोउ हिंसक अजान महाबलवान, खोदिमूल विरख उखारे गहिबाहुसों । तैसे मतिमान दर्व कर्म भावकर्म त्यागि, व्है रहे अतीत मति ज्ञानकी दसाहुसों ॥ याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अन्धकार, जगे ज्योति केवल प्रधान सवि ताहुसों । चुके न सकति सों लुके न पुद्गल मांहि, दुके मोष थलकों रुके न फिरि काहुसों ॥ ९५ ॥

इतिश्रीनाटकसमयसारविषेबंधद्वारअष्टमसमाप्तः ।

## ९ अध्याय मोक्षद्वार ।

दोहा—बंधद्वार पूरन भयो, जो दुख दोष निदान ।
अब बरनों संक्षेप सों, मोक्षद्वार सुख खान ॥ ९६ ॥

सवैया इकतीसा—भेद ज्ञान आरासों दुफारा करै ज्ञानी जीव, आतम करमधारा भिन्न २ चरचै । अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै, करम भरमको खजानो खोलि खरचै॥ योंही मोख मुख धावै केवल निकट आवै, पूरन समाधि

लहै पूरनके परचै। भयो निरदोर याहि करनो न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै॥ ९७॥

सवैया इकतीसा—काहु एकजैनी सावधान व्है परम पैनी, ऐसी बुद्धि छैनी घटमांहि डारिदीनी है। पैठी नौ करमभेदि दरब करम छेदि, सुभाउ विभाव ताकी संधि सोधि लीनी है॥ तहां मध्य पातीहोइ लखी तिन्हि धारादोइ, एकमुधा मईएक सुधारस भीनीहै। सुधासों विरचिसुधा सिन्धुमें मगन भई, एती सब क्रिया एकसमैवीच कीनी है॥९८॥

दोहा—जैसी छैनी लोहकी, करै एकसों दोइ।
जड़ चेतन की भिन्नता, त्यों सुबुद्धिसों होइ॥ ९९॥

सवैया इकतीसा—( सर्व हृस्वक्षर चित्रालङ्कार ) धरति धरम फल हरति करममल, मनवच तनबल करत समरपन। भखति असन सित चखति रसन रित, लखति अमित वित करि चित दरपन॥ कहति मरम धुर दहति भरमपुर, गहति परमगुर उर उपसरपन। रहति जगति हति लहति भगति रति, चहति अगतिगति यह मति परपन॥ ३००॥

सवैया इकतीसा—(सर्व गुरुअक्षर चित्रालङ्कार) रानाकोसो बाना लीने आपा साधे थाना चीने, दाना अंगी नाना रंगी खाना जंगी जोधाहै। माया वेली जेतीतेती रेतेमें धारेतीसेती, फंदाहीको कंदाखोदे खेती कोसो लोधाहै॥ बाधा सेती हांता लोरे राधा सेती तांता जोरे, बांदीसेती नांता तोरे चांदीकोसो सोधा है। जानै जाही ताही नीके मानेराही पाही पीके, ठानै बातै डाही ऐसो धारावाही बोधा है॥ १॥

सवैया इकतीसा—जिन्हिके दरब मिति साधत छ खंड थि-

ति, तिनसै विभाव अरिपंकति पतन है । जिन्हिके भगतिको विधान पईनो निधान, त्रिगुनके भेदमान चौदह रतन है ॥ जिन्हिके सुबुद्धि रानी चूरि महा मोह वज्र, पूरेमंगलीक जे जे मोखके जतनहै । जिन्हिके प्रमान अंग सोहै चमू चतुरंग, तेई चक्रवर्त्ति तनु धरै पै अतनहै ॥ २ ॥

दोहा—श्रवन कीरतन चिंतवन, सेवन वंदन ध्यान ।
लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रमान ॥ ३ ॥

सवैया इकतीसा—कोई अनुभवी जीव कहै मेरे अनुभौमें, लक्षन विभेद भिन्न करमको जाल है । जानै आप आपुकों जु आपु करी आपुविषे, उतपति नास ध्रुव धारा असरालहै ॥ सारे विकलप मोसों न्यारे सरवथा मेरो, निहचै सुभाउ यह विवहार चाल है । मैं तो शुद्ध चेतन अनंत चिन मुद्रा धारी, प्रभुता हमारी एक रूप तिहूं काल है ॥ ४ ॥

सवैया इकतीसा—निराकार चेतना कहावै दरसन गुन, साकार चेतना शुद्ध ज्ञान गुण सार है। चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरवमांहि, सामान विशेष सत्ताही को विसतारहै॥ कोउ कहै चेतना चिनह नाही आत्मामें । चेतनाके नास होत त्रिविधि विकारहै । लक्षनको नास सत्ता नास मूल वस्तु नास, तातें जीव दरवको चेतना आधार है ॥ ५ ॥

दोहा—चेतन लच्छन आतमा, आतम सत्ता मांहि ।
सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूंमें नांहि ॥ ६ ॥

सवैया तेईसा—ज्यों कलधौत सुनाराकि संगति, भूषन नांउ कहै सब कोई । कंचनता न मिटी तिहिं हेतु, वहै फिर औटि तु कंचन होई ॥ त्यों यह जीव अजीव संयोग भयो, बहु रूप

भयोनाहि दोई। चेतनता न गई कबहु तिहिं,कारनब्रह्मकहावत सोई ॥ ७ ॥

सवैयातेईसा—देखु सखी यह आपु विराजत,याकिदसा सब याहिकुं सोहै । एकमें एक अनेक अनेकमें, द्वंद लिये दुविधा महि दो है॥ आपु सँभारि लखै अपनो पद,आपु विसारके आपुहि मोहै। व्यापकरूप यहै घट अंतर, ज्ञानमें कौन अज्ञानु में कोहै! ॥ ८॥

सवैया इकतीसा—ज्यों नट एक धरै बहु भेष कला प्रगटै जग कौतुक देखै।आपु लखै अपनी करतूति वहै नट भिन्न विलोकत ऐखै॥ त्यों घटमें नटचेतन राउ,विभाउ दसाधरि रूप विसेखै। खोलि सुदृष्टि लखै अपनो पद, दुंद बिचार दसा नहि लेखै॥ ९॥

अडिल्ल छंद—जाके चैतनभाव चिदातम सोइ है। और भाव जो धरे सु औरे कोईहै ॥ यों चिनमंडित भाव उपादे जानते । त्याग जोग परभाव पराये मानते ॥ १० ॥

सवैया इकतीसा—जिन्हके सुमति जागी भोगसों भये विरागी, परसंग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवनमें । रागादिक भावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कबहू मगन व्हे न रहै धाम धनमें ॥ जे सदीव आपकों विचारै सरवंग सुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापै कब मनसें । तेई मोक्ष मारग के साधक कहावैं जीव,भावै रहो मंदिरसें भावे रहो बनमें॥ ११ ॥

सवैया तेईसा—चेतन मंडित अंग अखंडित,शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो । राग विरोध विमोह दशा, समुझे भ्रम नाटिक पुग्गल केरो ॥ भोग सँयोग वियोग व्यथा, अविलो-

कि कहै यह कर्मज घेरो । है जिन्हकों अनुभौ इहि भांति, सदा तिन्हिकों परमारथ नेरो ॥ १२ ॥

दोहा—जो पुमान परधन हरै, सो अपराधी अज्ञ ।
जो अपनो धन त्रिवहरै, सो धनपति धरमज्ञ ॥ १३ ॥
परकी संगति जो रचै, बंध बढावे सोइ ।
जो निजसत्तामें मगन, सहज मुक्त सो होइ ॥ १४ ॥
उपजे विनसे थिर रहै, यहतो वस्तु बखान ।
जो मरजादा वस्तुकी, सो सत्ता परवान ॥ १५ ॥

सवैया इकतीसा—लोकालोक मान एक सत्ताहै आकाश दर्व, धर्म दर्व एक सत्ता लोक परिमिति है । लोक परवान एक सत्ता है अधर्म दर्व, कालके अणु असंख सत्ता अगनिति है ॥ पुदगल शुद्ध परवानकी अनंत सत्ता, जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थिति है । कोउ सत्ता काहुसों न मिलै एकमेक होइ, सबे अस हाय यों अनादिही की थिति है ॥ १६ ॥

सवैया इकतीसा—एइ छहो द्रव्य इन्हहीको है जगत जाल, तामें पांच जड एक चेतन सुजान है । काहुकी अनंत सत्ता काहुसों न मिले कोई, एक एक सत्ता में अनंत गुन गान है ॥ एक एक सत्तामें अनंत परजाय फिरे, एक में अनेक इह भांति परवान है । यहे स्यादबाद यहै संतनिकी मरजाद, यहे सुख पोषयहै मोक्षको निदान है ॥१७॥

सवैया इकतीसा—साधि दाधि मंथनि अराधि रसपंथनि में, जहां तहां ग्रंथनिमें सत्ताही को सोर है । ज्ञान भानु सत्तामें सुधा निधान सत्ताही में, सत्ताकी दुरनि सांझि सत्ता

मुख भोर है ॥ सत्ताको सरूप मोख सत्ता भूलै यहै दोष, सत्ताके उलंघै धूम धाम चिहू ओर है । सत्ताकी समाधि में विराजि रहेसोई साहु, सत्तातें निकसि और गहे सोई चोर है ॥ १८ ॥

सवैया इकतीसा—जामें लोक वेद नांहि थापना उछेद नांहि, पाप पुन्य खेद नांहि क्रिया नांहि करनी । जामें राग दोष नांहि जामें बंध मोख नांहि, जामें प्रभु दास न अकास नांहि धरनी ॥ जामें कुलरीत नांहि जामें हारजीत नांहि जामें गुरु शिख नांहि विष नांहि भरनी । आश्रम वरन नांहि काहुकी सरनि नांहि, ऐसी सुद्ध सत्ताकी समाधि भूमि वरनी ॥ १९ ॥

दोहा—जाके घट समता नही, ममता मगनसदीव ।
रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥ २० ॥
अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध ।
परकों माने आतमा, करे करम को वंध ॥ २१ ॥
झूठी करनी आचरे, झूठै सुखकी आस ।
झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभुको दास ॥ २२ ॥

सवैया इकतीसा—माटीभूमी सैलकी सुसंपदा वखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहरहै। अपनो न रूप गहै औरही सों आपु कहै, साता तो समाधि जाके असाता कहरहै ॥ कोपको कृपान लिये मान मदपान किये, मायाकी मरोरि हिये लोभकी लहरहै। याही भांति चेतन अचेतनकी संगतिसों, साचसों विमुख भयो झूठमें बहरहै ॥ २३ ॥

सवैया इकतीसा—तीनकाल अतीत अनागत वरतमान, ज-

गमें अखंडित प्रवाहको डहरहै। तासों कहै यह मेरो दिन यह मेरी घरी, यह मेरोई परोई मेरोई पहर है ॥ खेहको खजानो जोरे तासों कहे मेरोगेह, जहां वसे तासों कहे मेरोही सहरहै। याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतिसों, सांचसों विमुख भयो झूठमें बहरहै ॥ २४ ॥

दोहा—जिन्हके मिथ्या माति नहीं, ज्ञानकला घटमांहि।
परचे आतम रामसों, ते अपराधी नांहि ॥ २५ ॥

सवैया इकतीसा—जिन्हके धरमध्यान पावकप्रगटभयो, संसे मोह विभ्रम विरष तीन्यो वढ़ेहैं। जिनकी चितौनि आगे उदै स्वान भूँसि भागे, लागे न करमरज ज्ञानगज षढ़ेहैं ॥ जिन्हिकी समुझिकी तरंग अंग अगममे, आगममें निपुन अध्यातम मे कढ़ेहैं। तेई परमारथी पुनीत नर आठो जाम, राम रस गाढ़ करे यहै पाढ़ पढ़े हैं ॥ २६ ॥

सवैया इकतीसा—जिन्हकी चिहुंटी चिमटासी गुन चूनवे कों, कुकथाके सुनवेकों दोउ कान मढ़े हैं। जिन्हको सरल चितकोमल वचनबोले, सोम दृष्टि लिये डोले मोम कैसे गढेहैं॥ जिन्हिके सगति जगि अलख अराधिवेकों; परम समाधि साधिवेगो मन बढ़ेहैं। तेईं परमारथी पुनीत नर आठों जाम, राम रस गाढ़ करे यहै पाढ़ पढ़े हैं ॥ २७ ॥

दोहा—राम रसिक अरु रामरस, कहन सुननकोंदोइ।
जब समाधि परगटभई, तब दुबिधा नहिंकोइ ॥ २८ ॥
नंदन बंदन थुति करन, श्रवन चिन्तवन जाप।
पढन पढावन उपदिसन, बहुविधक्रिया कलाप ॥ २९ ॥
शुद्धातम अनुभौ जहां, सुभाचार तिहिनांहि।

करमकरममारगविषै, शिवमारग शिवमांहि ॥ ३० ॥

चौपाई ।

इहि विध बस्तुव्यवस्था जैसी । कही जिनिंद कहीमैं तैसी ॥
जे प्रमाद संयति मुनिराजा । तिन्हिकोशुभाचारसोंकाजा॥३१
जहांप्रमाद दसा नाहि व्यापे । तहां अवलंब आपनो आपे ॥
ता कारन प्रमाद उतपाती । प्रगटमोक्ष मारगकोघाती॥३२॥
जे प्रमाद संयुक्त गुसांई । ऊठहि गिरिहि गिंदुककीनांई॥
जे प्रमादतजि उद्धत होही । तिन्हिकोमोषनिकटदृगसोही॥३३
घट में है प्रमाद जब तांई । पराधीन प्रानी तब तांई ॥
जब प्रमादकी प्रभुता नासै । तबप्रधान अनुभौपरगासै॥३४॥

दोहा—ता कारन जगपंथ इत, उत शिव मारग जोर ।
परमादी जग कों ढुके, अपरमाद शिव ओर ॥ ३५ ॥
जे परमादी आलसी, जिन के विकलपभूरि ।
होहिसिथिलअनुभौविषे, तिन्हिकोशिवपथदूरि॥३६॥
जे अविकलपी अनुभवी, शुद्ध चेतना युक्त ।
ते मुनिवर लघुकालमें, होहि करम सों मुक्त ॥ ३७ ॥
जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव ।
जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥ ३८ ॥

कवित्त छंद—जैसे पुरुष लखे पहार आढि, भूचर पुरुष तांहि लघु लग्ग । भूचर पुरुष लखे ताकों लघु, उतर मिलै दुहुकोभ्रम भग्ग ॥ तैसें अभिमानी उन्नत गल, और जीव कों लघुपद दग्ग । अभिमानीकों कहे तुच्छ सब, ज्ञान जगे समतारस जग्ग ॥ ३९ ॥

सवैया इकतीसा—करम के भारी समुझे न गुनको मरम

परम अनीति अधरम रीतिगहे है। होहि न नरम चितगरम घरमहुते, चरमकी दृष्टिसों भरम भूली रहे है॥ आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर, नाएहू न डोले मानो पाथरके चहे है। देखनके हाउ भव पंथके वटाउ ऐसें, मायाके खटाउ अभिमानी जीव कहे है॥ ४० ॥

सवैया इकतीसा—धीरके धरैया भवनीरके तरैया भय,भीरके हरैया वर वीर ज्यों उमहे हैं। मारके मरैया सुवीचारके करैया सुख, ढारके ढरैया गुनलोसों लह लहेहैं॥ रूपके रिझैया सर्वनके समुझैया सव,हीके लघुभैया सवके कुवोल सहे हैं। वामके वमैया दुखदाम के दमैया ऐसे, रामके रमैया नर ज्ञानी जीव कहे हैं॥ ४१ ॥

चौपाई।

जे समकिती जीव समचेती। तिन्हिकी कथाकहोंतुमसेती॥
जहां प्रमाद क्रियानहि कोई। निर्विकल्पअनुभौ पदसोई ४२॥
परिग्रहत्याग जोगथिरतीनो। करम वंध नहि होइ नवीनो॥
जहांन राग दोष रस मोहे। प्रगट मोखमारग सुख सोहे४३
पूरव वंध उदे नहि व्यापे। जहांन भेद पुन्न अरु पापे॥
दरवभाव गुन निर्मल धारा। वोधाविधानविविधिविस्तारा४४
जिन्हिके सहज अवस्था ऐसी। तिन्हिके हिरदे दुविधा केसी॥
जे मुनिक्षिपकश्रेणि चढ़िधाये। ते केवलि भगवान कहाये४५॥

दोहा—इंहिविधि जे पूरन भये, अष्ट करम वनदाहि॥
तिन्हिकी महिमा जो लखे,नमे वनारसि ताहि॥ ४६॥

छप्पय छन्द—भयो शुद्ध अंकूर, गयो मिथ्यात मूर नशि।

क्रमक्रम होत उदोत, सहजजिम शुक्लपक्ष शशि ॥ केवल रूप प्रकासि, भासि सुख रासि धरम धुव । करिपूरन थित आउ त्यागि गतभाव परम हुव ॥ इहविधि अनन्य प्रभुता धरत, प्रगटि बूंद सागर भयो । अविचल अखंड अनभय अखय, जीव दरव जगमहि जयो ॥ ४७ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञानावरनीके गये जानिये जु है सु सव, दंसनावरनके गयेतें सब देखिये । वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित बिसेखिये ॥ आउ कर्म गये अवगाहन अटल होइ, नाम कर्म गयेते अमूरतीक पेखिये । अगुरुलघुरूप होई गोत कर्मगये, अंतराय गयेतें अनंत वल लेखिये ॥ ४८ ॥

इति श्री नाटक समयसार विषै नवमो मोक्ष द्वार समाप्तः

# १० अध्याय सरव विशुद्धि द्वार

दोहा—इति श्रि नाटिक ग्रंथमें, कह्योमोक्षअधिकार ।
अव वरनों संक्षेपसों, सरब बिशुद्धि द्वार ॥ ४६ ॥

सवैया इकतीसा—करमको करताहै भोगनिको भोगताहै, जाकी प्रभुतामें ऐसो कथन अहितहै । जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नांहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहितहै ॥ ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है सुभाउ जाको, लोक व्यापी लोकातीति लोकमें महितहै । शुद्ध वंस शुद्ध चेतना के रस अंश भर्यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहितहैं ॥५०॥

दोहा—जो निहचे निरमल सदा, आदि मध्य अरु अंत।
सो चिद्रूप बनारसी, जगत मांहि जय वंत॥ ५१॥

चौपाई।

जीव करम करता नहि ऐसो। रस भोगता सुभाउ न जैसो॥
मिथ्यामतिसों करता होई। गये अज्ञान अकरता सोई॥५२॥

सवैया इकतीसा—निहचे निहारत सुभाउ जाहि आतमाको, आतमीक धरम परम परगासना। अतीत अनागत बरतमान काल जाको, केवल सरूप गुन लोकालोक भासना॥ सोई जीव संसार अवस्थामांहि करमको, करतासो दीसे लिये भरम उपासना। यहे महा मोहके पसार यहे मिथ्याचार, यहे भौ विकार यहे व्यवहार वासना॥ ५३॥

चौपाई।

जथा जीव करता न कहावे। तथा भोगता नाउ न पावे॥
है भोगी मिथ्या मतिमांही। मिथ्यामती गयेतें नांही॥५४॥

सवैया इकतीसा—जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजाय बुद्धी, सोतो विषै भोगनिको भोगता कहायो है। समकिती जीव जोग भोगसों उदासी तातें, सहज अभोगता गरंथनि में गायो है॥ याही भांति वस्तुकी व्यवस्था अवधारे बुध, परभाउ त्यागि अपनो सुभाउ आयो है। निर विकलप निरुपाधि आतमा अराधि, साधि जोग जुगति समाधि में समायो है॥ ५५॥

सवैया इकतीसा—चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन, रतन भंडारी अपहारी कर्म रोग को। प्यारो पंडितनिको हुस्यारो मोष मारग में, न्यारो पुद्गलसों उजियारो

उपयोगको ॥ जाने निज पर तत्त रहे जग में विरत्त, गहे न ममत्त मन वच काय जोगको । ता कारन ज्ञानी ज्ञानावरनादि करम को, करता न होइ भोगता न होइ भोग को ॥ ५६ ॥

दोहा—निरभिलाष करनी करे, भोग अरुचि घटमांहि ।
तातें साधक सिद्ध सम, करता भुगता नांहि ॥ ५७ ॥

कवित्त छंद—ज्यों हिय अंध विकल मिथ्या धर, मृषा सकल विकलप उपजावत । गहि एकन्त पक्ष आतमको, करता मानि अधोमुख धावत ॥ त्यों जिनमती दरव चारित कर, करनी करि करतार कहावत । वंछित मुक्ति तथापि मूढ़ मति, विनु समकित भवपार न पावत ॥ ५८ ॥

चौपाई ।

चेतनअंक जीव लखि लीन्हा । पुद्गलकरमअचेतनचीन्हा ॥
वासी एक खेत के दोऊ । यदपितथापि मिलेनहिंकोऊ ॥ ५९ ॥

दोहा—निज निज भाउक्रिया सहित, व्यापक व्यापिनकोइ ।
करता पुद्गलकरमको, जीव कहांसौं होइ ॥ ६० ॥

सवैया इकतीसा—जीव अरु पुद्गल करम रहे एक खेत, जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है । लक्षन सरूप गुन परजै प्रकृति भेद, दुहूमें अनादिहीकी दुविधा व्है रही है ॥ एते परि भिन्नता न भासे जीव करमकी, जौलौं मिथ्या भाउ तौलौं ओंधी वाउ वही है । ज्ञान के उदोत होत ऐसी सूधी दृष्टि भई, जीव कर्म पिण्ड को अकरतार सही है ॥ ६१ ॥

दोहा—एक वस्तु जैसी जुहे, तासों मिले न आन ।

जीव अकर्ता करमको, यह अनुभो परवान ॥ ६२ ॥

चौपाई ।

जे दुरमती विकल अज्ञानी । जिन्हिसुरीतिपररीतिनजानी ।
मायामगनभरमके भरता । ते जिय भावकरमकेकरता ॥ ६३ ॥

दोहा—जे मिथ्यामतितिमरसों, लखे न जीव अजीव ।
तेई भावित करम के, करता होइ सदीव ॥ ६४ ॥
जे अशुद्ध परिनति धरे, करे अहं परवान ।
ते अशुद्ध परिनाम के, करता होइ अजान ॥ ६५ ॥
शिष्य कहै प्रभु तुम्हकह्यो, दुबिधकरमकोरूप ।
दर्व कर्म पुद्गल मई, भाव कर्म चिद्रूप ॥ ६६ ॥
करता दरवित करमको, जीवनहोइ त्रिकाल ।
अबइहभावितकरमतुम, कहो कौनकीचाल ॥ ६७ ॥
करता याको कौनहै, कौन करै फल भोग ।
कै पुद्गल कै आतमा, कै दुहुको संयोग ॥ ६८ ॥
क्रियाएक करतायुगल, यों न जिनागममांहि ।
अथवा करनी औरकी, और करै यों नांहि ॥ ६९ ॥
करे और फल भोगवे, और बने नहि एम ।
जो करता सो भोगता, यहे यथावत जेम ॥ ७० ॥
भाव कर्म कर्त्तव्यता, स्वयं सिद्ध नहि होइ ।
जो जगकी करनी करे, जगवासी जियसोइ ॥ ७१ ॥
जियकरता जियभोगता, भावकर्म जियचालि ।
पुदगल करे न भोगवे, दुविधा मिथ्या जालि ॥ ७२ ॥
तातें भावित करमकों, करे मिथ्याती जीव ।
सुख दुख आपद संपदा, भूंजे सहज सदीव ॥ ७३ ॥

सवैया इकतीसा—केई मूढ़ विकल एकंत पच्छ गहै कहै, आतमा अकरतार पूरन परमहै । तिन्हसौं जु कोउकहै जीव करता है तासौं, फेरीकहै करमको करता करम है ॥ ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्म घाती जीव, जिन्हके हिये अनादि मोह को भरम है । तिन्हको मिथ्यात दूरि करिवेको कहै गुरु स्यादवाद परवान आतम धरम है ॥ ७४ ॥

दोहा—चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान ।
नहिकरता नहि भोगता,निहचै सम्यकवान ॥ ७५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसें सांख्यमति कहै अलख अकरता है,सर्वथा प्रकार करता न होइ कवही । तैसें जिनमति गुरु मुख एक पक्ष सुनि, याही भांति मानै सो एकंत तजो अवही ॥ जोलौं दुरमति तौलौं करमको करता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सबही । जाके घट ज्ञायक सुभाउ जग्यो जवही सो, सोतो जग जालसौं निरालो भयोतवही ॥ ७६ ॥

दोहा—बोध छिनक वादी कहै, छिनु भंगुर तनुमांहि ।
प्रथम समे जो जीवहै, दुतिय समे सो नांहि ॥ ७७ ॥
ताते मेरे मतविषे, करे करमजो कोइ ।
सो न भोगवे सरवथा, और भोगता होइ ॥ ७८ ॥
यह एकंत मिथ्यात पख, दूरि करनके काज ।
चिदविलासअविचलकथा,भाषैश्रीजिनराज ॥ ७९ ॥
बालापन काहू पुरुष, देख्यो पुर कइ कोइ ।
तरुन भये फिरिके लख्यो,कहे नगर यह सोइ ॥ ८० ॥
जो दुहुपनमें एकथो, तो तिन्हि सुमिरन कीय ।
और पुरुषको अनुभव्यो, और न जाने जीय ॥ ८१ ॥

जबयह वचन प्रगटसुन्यो,सुन्यो जैनमतशुद्ध।
तब इकांत वादी पुरुष, जैन भयो प्रति बुद्ध ॥ ८२॥

सवैया इकतीसा—एक परजाय एक समैमें विनसि जाइ, दूजी परजाय दूजे समै उपजति है। ताको छल पकरि के बोध कहै समै समै, नवो जीव उपजे पुरातन की षति है॥ ताते मानै करमको करता है और जीव, भोगता है और वाके हिए ऐसी मतिहै। परजै प्रवानको सरवथा दरबजाने, ऐसे दुरबुद्धिकों अवश्य दुरगति है ॥ ८३॥

दोहा—दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्या चाल।
गहि एकंत दुर्बुद्धिसों, मुकति न होइत्रिकाल ॥ ८४ ॥
कहै अनातमकी कथा, चहै न आतम शुद्धि।
रहै अध्यातमसों विमुख, दुराराधि दुर्बुद्धि ॥८५॥

सवैया इकतीसा—कायासें विचारि प्रीति मायाहि में हारि जीति, लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी। चूंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्योंही पाई गाडे पें न छांडे टेक पकरी ॥ मोहकी मरोरसों भरमको न ठोरपावे, धावै चिहु और ज्यों बढावे जाल मकरी। ऐसी दुर्बुद्धि भूलि झूठ के झरोखे झूलि, फूली फिरे ममता जंजीरनि सों जकरी॥ ८६ ॥

सवैया इकतीसा—बात सुनि चौकउठे बातहिसों भौंकी उठे, बातसों नरम होइ बातहींसो अकरी। निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी ॥ मोख न सुहाइ दोख देखै तहां पेंठि जाई, कालसो डराई जैसे नाहरसों बकरी। ऐसी दुरबुद्धि भूलि

जूठके झरोखेझूलि,फूलीफिरेममता जंजीरनिसों जकरी ८७॥

कवित्त छन्द—केई कहै जीव छिन भंगुर, केई कहै करम करतार। केई कर्म रहित नित जंपहि, नय अनंत नाना परकार॥ जे एकंत गहै ते मूरख, पंडित अनेकांत पखधार। जैसे भिन्न भिन्न मुक्तागन, गुनसों गहत कहावे हार ॥ ८८ ॥

दोहा—जथा सूतसंग्रहविना, मुक्तमाल नाहि होइ।
तथा स्याद्वादी विना, मोख न साधे कोई ॥ ८९ ॥
पद सुभाउ पूरबउदे, निहचे उद्दिम काल।
पक्षपात मिथ्यातपथ, सरवंगी शिव चाल ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसा—एक जीव वस्तु के अनेक रूप गुन नाम, निरजोग शुद्ध पर जोग सों अशुद्ध है। वेद पाठी ब्रह्म कहै मीमांसक कर्म कहै, शिवमति शिव कहै बोध कहे बुद्ध है॥ जैनी कहे जिन न्यायबादी करतार कहै,छहों दरसनमें बचनको विरुद्ध है। वस्तुको सरूप पहिचाने सोइ परबीन, बचनके भेदभेद मानेसोइ शुद्ध है ॥ ९१ ॥

सवैया इकतीसा—वेदपाठी ब्रह्म मानै निहचै स्वरूप गहै, मीमांसक कर्म माने उदैमें रहतुहै। बोधमति बुद्धमाने सूक्षम सुभाउ साधै, शिवमती शिवरूप कालको हरतुहै॥ न्याय ग्रंथके पढैया थापे करतार रूप, उद्दिम उदीरी उर आनंद लहतुहै। पांचो दरसनी तेतो पोषे एक एक अंग, जैनी जिनपंथी सरवंगी नै गहतुहै ॥ ९२ ॥

सवैया इकतीसा—निहचै अभेद अंग उदै गुनकी तरंग, उद्यम की रीति लिये उद्धता सकति है। परजाय रूपको

प्रवान सूक्षम सुभाउ, काल कीसी ढाल परिनाम चक्रगति है ॥ याही भांति आतम दरबके अनेक अंग, एक माने एक कों न माने सो कुमति है । टेक डारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि, खोजी जीवे वादी मरे साची कहवतिहै ॥ ९३॥

सवैया इकतीसा—एकमें अनेक है अनेकही में एकहै सु, एक न अनेक कछु कह्यो न परतु है । करता अकरता है भोगता अभोगता है, उपजे न उपजिति मूए न मरतु है ॥ बोलत विचारत न बोले न विचारे कछु, भेषको न भाजन पै भेखसो धरतु है । ऐसो प्रभु चेतन अचेतन की संगती सो, उलट पलट नट वाजी सी करतु है ॥ ९४ ॥

दोहा—नटबाजी विकलपदसा, नाही अनुभौ जोग ।
केवल अनुभौ करनको, निरविकलप उपयोग ॥ ९५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे काहु चतुर संवारी है मुगतमाल, मालाकी क्रियामें नाना भांतिको विज्ञान है । क्रियाको विकलप न देखे पहिरन वालो, मोतीन की शोभमें मगन सुख वान है ॥ तैसें न करे न भुजे अथवा करे सु भुजे, और करे ओर भुजे सव नै प्रवान है । यद्यपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग, निरविकलप अनुभो अमृत पानहै ॥ ९६ ॥

दोहा—दरव करम करता अलख, यहु विवहार कहाउ ।
निहचे जोजे सोदरव, तैसो ताको भाउ ॥ ९७ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञानको सहज ज्ञेयाकाररूप परिनमे, यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञानरूप कह्यो है । ज्ञेयज्ञय रूप यों अनादिहीकी मरजाद, काहु वस्तु काहुको सुभाउ नाहि गह्यो है ॥ एते परि कोउ मिथ्या मति कहे ज्ञयकार, प्रति भा-

सनिसों ज्ञान अशुद्ध व्है रह्यो है । याहि दुरबुद्धिसों त्रिकल भयो डोलत है, समुझे न धरमयों भर्ममाहि बह्योहै ॥ ९८ ॥

चौपाई ।

सकल वस्तु जगमें असुहाई । वस्तु वस्तुसों मिले न काई ॥
जीव वस्तु जाने जग जेती । सोऊ भिन्न रहे सबसेती ९९॥

दोहा—करम करे फल भोगवे, जीव अज्ञानी कोइ ।
यहकथनी व्यवहारकी, वस्तु स्वरूप न होइ ॥ ४०० ॥

कवित्त छंद—ज्ञेआकार ज्ञानकी परिनति, पैं वह ज्ञान ज्ञेय नाहि होइ । ज्ञेय रूप षट दरव भिन्न पद, ज्ञानरूप आतम पदसोइ ॥ जाने भेद भाउ सुविचक्षनगुन लच्छन सम्यक दृग जोइ । मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नाहि कोइ ॥ १ ॥

चौपाई ।

निराकार जो ब्रह्म कहावे । सो साकार नाम क्यों पावे ॥
ज्ञेयाकार ज्ञान जब तांई । पूरन ब्रह्म नाहि तबतांई ॥२॥
ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने । नास करनको उद्दिम ठाने ॥
वस्तु सुभाउमिटे नहिक्योंही । ताते खेद करे सठयोंही ॥ ३ ॥

दोहा—मूढ मरम जाने नही, गहे इकांत कुपक्ष ।
स्यादवाद सरबंग में, माने दक्ष प्रतक्ष ॥ ४ ॥
शुद्ध दरब अनुभौकरे, शुद्ध दृष्टि घट मांहि ।
ताते सम्यकवन्तनर, सहज उछेदक नाहि ॥ ५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसें चन्दकिरन प्रगटि भूमि सेतकरे, भूमि सीत होति सदा जोतिसी रहति है । तैसें ज्ञान सकति प्रकासे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पे न ज्ञेयकों ग-

गहति है ॥ शुद्ध वस्तु शुद्ध परजाय रूप परिनमै, सत्ता परवान मांहि ढाहे न ढहति है । सो तो औररूप कवहो न होइ सरवथा, निहचै अनादि जिन वानी यों कहति है ॥ ६ ॥

सवैया तेईसा—राग विरोध उदे तवलों जवलों यह जीव मृषामग धावे । ज्ञान जग्यो जव चेतनको तव कर्म दशा पररूप कहावे ॥ कर्म विलेछि करे अनुभो तव मोह मिथ्यात प्रवेश न पावे । मोह गये उपजे सुख केवल सिद्ध भयो जगमांहि न आवे ॥ ७ ॥

छप्पय छन्द—जीव करम संयोग, सहज मिथ्यात रूप धर । राग दोष परिनति, प्रभाव जाने न आपपर ॥ तम मिथ्यात मिटिगयो, भयो समकित उदोत शशि । राग दोष कछु वस्तु नाहि छिनु माहि गये नसि ॥ अनुभो अभ्यासि सुखराशिरमि, भयो निपुन तारन तरन । पूरनप्रकाश निहचलि निरखि, वनारसी वंदत चरन ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ शिष्य कहे स्वामी राग दोष परिनाम, ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कोन है । पुग्गल करम जोग किधों इन्द्रिनिको भोग, किधों धन किधोंपरिजन किधों भोन है ॥ गुरु कहे छहों दर्व अपने अपनेरूप, सवनिको सदा असहाई परीनोन है । कोउ दर्व काहुको न प्रेरक कदाचि ताते, राग दोष मोह मृषा मदिरा अचोन है ॥ ९ ॥

दोहा—कोऊ मूरख यों कहै, राग दोष परिनाम ।
पुग्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम ॥ १० ॥

ज्योंज्योंपुग्गल वलकरे, धरिधरि कर्मज भेष ।
राग दोषको परिनमन, त्यों त्यों होइ विशेष ॥ ११ ॥
इहबिधि जो विपरीलिपख, गहे सद्दहे कोइ ।
सो नर राग विरोधसों, कबहूं भिन्नन होइ ॥ १२ ॥
सुगुरु कहै जगमें रहे, पुग्गल संग सदीव ।
सहज शुद्ध परिनमनको, औसर लहेन जीव ॥ १३ ॥
ताते चिदभावन विषे, समरथ चेतन राउ ।
राग विरोध मिथ्यातमें सम्यकमें सिवभाउ ॥ १४ ॥
ज्यों दीपक रजनीसमै, चिहुदिसिकरे उदोत ।
प्रगटे घट पट रूपमें, घट पट रूप न होत ॥ १५ ॥
त्यों सु ज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म ।
ज्ञेयाकृति परिनमनपे, तजै न आतम धर्म ॥ १६ ॥
ज्ञानधर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ ।
राग विरोध विमोहमय, कबहूं भूलि न होइ ॥ १७ ॥
ऐसी महिमा ज्ञानकी, निहचै है घट मांहि ।
मूरख मिथ्या दृष्टिसों, सहज विलोके नांहि ॥ १८ ॥
परसुभाव में मगन व्है, ठाने राग विरोध ।
धरै परिग्रह धारना, करे न आतम सोध ॥ १९ ॥

चौपाई ।

मूरख के घट दुरमति भासी । पंडितहिए सुमति परगासी ॥
दुरमति कुबजा करमकमावे । सुमतिराधिकारामरमावे॥२०॥

दोहा—कुबजा कारी कूबरी, करे जगत में खेद ।
अलख अराधे राधिका, जाने निजपर भेद ॥ २१ ॥

सवैया इकतीसा—कुटिल कुरूप अंग लगीहै पराए संग,

अपनो प्रवान करि आपुहि विकाई है । गहे गति अंधकी-सी सकती कमंधकीसी, बंधको वढ़ाउ करे धंधहीमें धाईहै ॥ रांडकीसी रीति लिए मांडकीसी मतवारी, सांड ज्यों सुछंद डोले भांडकीसी जाईहै । घरको न जाने भेद करे पराधनी खेद, याते दुर्बुद्धि दासी कुवजा कहाई है ॥ २२ ॥

सवैया इकतीसा—रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील, सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाईहै । प्राची ज्ञान भानकी अजाची है निदानकी सुराची नरवाची ठोर साची ठकुराई है ॥ धामकी खबरदार रामकी रमन हार, राधारस पंथनिमें ग्रंथनिमें गाईहै । संतनिकी मानी निरवानी नूरकी निसानी, याते सद्बुद्धि रानी राधिका कहाईहै ॥ २३ ॥

दोहा—यह कुवजा यह राधिका, दोऊ गति मति मान ।
यह अधिकारनि करमकी, यह विवेककीखान ॥ २४ ॥
दरव करम पुद्गल दसा, भाव कर्म मति वक्र ।
जो सुज्ञानको परि नमन, सो विवेक गुनचक्र ॥ २५ ॥

कवित्त छंद—जैसे नर खेलार चोपरको, लाभ विचार करे चित चाउ । धरि सवारि सारबुद्धी बलसों, पासाको कुछु परे सुदाउ ॥ तैसें जगत जीव स्वारथको, करि उद्यम चिंतवे उपाउं । लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको यही सुभाउ२६

कवित्त छंद—जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सब सतरंजकी घात । चले चाल निरखे दोऊ दल, मोहरा गन न विचारे मात ॥ तैसे साधु निपुन शिव पथमें, लक्षन लखे तजे उतपात । साधे पुन्य चिंतवे अभै पद, यह सुविवेक चक्रकी बात ॥ २७॥

दोहा—सतरंज खेले राधिका, कुवजा खेले सारि ।

याकेनिसिदिनजीतवो,वाकेनिसिदिनहारि॥ २८ ॥
जाके उर कुबजा बसे, सोई अलख अजान।
जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यक वान॥ २९॥

सवैयाइकतीसा—जहांशुद्ध ज्ञानकी कलाउद्योत दीसे तहां, शुद्ध परवान शुद्ध चारित्रको अंस है। ता कारन ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म,वैराग विलास धर्म वाको सरवंसहै॥ राग दोष मोहकी दसासों भिन्न रहे याते, सर्वथा त्रिकाल कर्मजालको विध्वंसहै। निरूपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरन परमहंस है॥ ३०॥

दोहा—ज्ञायक भाव जहां तहां, शुद्ध चरनकी चाल।
तातै ज्ञान विराग मल, सिवसाधे समकाल॥ ३१॥
यथा अंधके कंध परि, चढ़े पंगु नर कोइ।
वाके दृग वाके चरण,होहिपथिकमिलिदोइ॥ ३२॥
जहांज्ञान किरिया मिले,तहां मोक्षमग सोइ।
वह जाने पदको मरम, वह पदमें थिरहोइ॥ ३३॥
ज्ञान जीवकी सजगता, करम जीवकी भूल।
ज्ञान मोक्ष अंकूर है, करम जगतको मूल॥ ३४॥
ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम।
कर्म चेतनामें वसे, कर्म बंध परिनाम॥ ३५॥

चौपाई।

जबलग ज्ञान चेतना भारी। तबलगु जीव विकल संसारी॥
जबघट ज्ञान चेतना जागी। तबसम किती सहज वैरागी॥३६॥
सिद्ध समान रूप निज जाने। पर संजोग भाव परमाने॥
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासे। त्रिविधकरमकी ममतानासे॥३७॥

दोहा—ज्ञानवंत अपनी कथा, कहै आपसों आप ।
मैं मिथ्यात दसाविषे, कीने बहुविधि पाप ॥ ३८ ॥

सवैया इकतीसा—हिरदे हमारे महा मोहकी विकलता-ही. ताते हम करुना न कीनी जीव घातकी । आप पाप कीने ओरनकों उपदेश दीने, हृती अनमोदना हमारे याही वातकी ॥ मन वच कायमें मगन व्है कमाए कर्म, धाए भ्रम जालमें कहाए हम पातकी । ज्ञानके उदे भए हमारी दशा ऐसी भई, जेसी भान भासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ३९ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञान भान भासत प्रवान ज्ञानवान कहें, करुना निधान अमलान मेरो रूप है । कालसों अतीत कर्म चालसों अभीत जोग, जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है ॥ मोहको विलास यह जगतको वासमें तो, जगतसों शुन्य पाप पुन्य अंधकूप है । पाप किन कियो कौन करे करिहै सु कोन, क्रियाको विचारसुपनेकी धौरधूपहै ४०॥

दोहा—मैं यों कीनो यों करों, अव यह मेरो काम ।
मन वच कायामें वसे, ए मिथ्या परिनाम ॥ ४१ ॥
मनवच काया करमफल, करमदशा जडअंग ।
दरवित पुद्गल पिंडमें, भावित भरम तरंग ॥ ४२ ॥
तांते भावित धरमसो, करम सुभाव अपूठ ।
कोंन करावे को करे, कोसर लहे सव जूठ ॥ ४३ ॥
करनी हितहरनी सदा, मुकति वितरनीनांहि ।
गनी वंध पद्धति विषे, सनी महा दुख मांहि ॥ ४४ ॥

सवैया इकतीसा—करनी की धरनी में महा मोह राजा

बसे, करनी अज्ञानभाव राकसकी पुरी है। करनी करम काया पुग्गल की प्रती छाया करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है ॥ करनी के जालमें उरझि रह्यो चिदानंद करनीकी उट ज्ञान भान दुति दुरीहै। आचारज कहै करनीसों विव-हारी जीव करनी सदीव निहचै सरूप बुरी है ॥ ४५ ॥

चौपाई।

मृषा मोहकी परिनति फैली। तातें करम चेतना मैली ॥
ज्ञान होत हम समुझी एती। जीवसदीवभिन्नपरसेती॥४६॥

दोहा—जीवअनादिसरूपमम, करम रहित निरुपाधि।
अविनाशीअशरनसदा, सुखमयसिद्धसमाधि ॥ ४७॥

चौपाई।

मैं त्रिकाल करणीसों न्यारा। चिदविलासपदजगतउज्यारा॥
रागविरोधमोह ममनांही। मेरो अवलंवन मुझमांही ॥४८॥

सवैया तेईसा—सम्यकवन्त कहे अपने गुन, मैं नित राग विरोध सों रीतो। मैं करतूति करों निरवंछक, मोह विषे रस लागत तीतो॥ सुद्ध सुचेतनको अनुभौ करि, मैं जग मोह महाभड़ जीतो। मोप समीप भयो अव मोकहुं, कालअनंत इहीविधि बीतो ॥ ४९ ॥

दोहा—कहे विचक्षनमैंसदा, रह्यो ज्ञानरस राचि।
सुद्धातम अनुभूतिसों,खलितनहोइ कदाचि ॥ ५० ॥
पूर्व करम विष तरु भये, उदे भोग फल फूल।
मैं इन्हको नाहिं भोगता, सहजहोहुं निरमूल ॥ ५१ ॥
जो पूरव कृत कर्म फल, रुचिसों भुंजे नाहि।
मगन रहे आठो पहुर, शुद्धातम पदमांहि ॥ ५२ ॥

सो बुध कर्मदसा रहित, पावे मोख तुरंत ।
भुंजे परम समाधि सुख,आगम काल अनंत ॥ ५३ ॥

छप्पय छंद—जो पूरब कृतकर्म, विरष विषफल नहिभुंजे । जोग जुगति कारज करंत ममता न प्रजुंजे ॥ राग विरोध निरोध संग;विकलप सवि छंडे । शुद्धातम अनुभौ अभ्यासि, शिव नाटक मंडे ॥ जो ज्ञान वंत इहमग चलत, पूरन व्है केवल लहे । सो परम अतींद्रिय सुख विषे, मगनरूप संतत रहे ॥ ५४ ॥

सवैया इकतीसा—निरभै निराकुल निगमवेद निरभेद, जाके परगासमें जगत माइयतुहै । रूप रसगंध फास पुदगल को विलास, तासों उदबंश जाको जश गाइयतु है ॥ विग्रहसों विरत परिग्रहसें न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतुहै । सो हे ज्ञान परवान चेतन निधान ताहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसो नर भेदरूप निहचें अतीत हुंतो, तैसो निरभेद अब भेदको न गहेगो । दीसे कर्म रहित साहित सुख समाधान, पायो निज थान फिर बाहिर न वहेगो ॥ कवहु कदाचि अपनो सुभाउ त्यागि करि, राग रस राचिके न परवस्तु गहेगो । अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, याही भांति आगम अनंत काल रहेगो ॥ ५६ ॥

सवैया इकतीसा—जबहितें चेतन बिभाउसों उलटि आपु, समौ पाइ अपनो सुभाउ गहि लीनो है । तबहीते जो जो लेन जोग सो सो सब लीनो, जो जो त्याग जोग सो सो सब छांडि दीनोहै ॥ लेवेको नरही ठोर त्यागिवेकों नांही ओर,

बाकी कहा उबर्यो जु कारज नवीनोहै । संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनौ है ॥ ५७ ॥

दोहा—शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोइ ।
तातें कारन मोखको, दरबलिंगि नहिहोइ ॥ ५८ ॥
द्रव्य लिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विन्यान ।
अष्टमहारिधि अष्टसिधि, एऊ होहि न ज्ञान ॥ ५९ ॥

सवैया इकतीसा—भेषमें न ज्ञान नाहि ज्ञानगूरु वर्त्तनमें, मंत्र जंत्र तंत्रमें न ज्ञानकी कहानीहै । ग्रंथमें न ज्ञान नाहिं ज्ञान कवि चातुरीमें, वातनिमें ज्ञान नहीं ज्ञान कहा वानी है ॥ तातें भेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र बात, इनतें अतीत ज्ञान चेतना निसानीहै । ज्ञानहीमें ज्ञाननही ज्ञान ओरठोर कहू, जाके घट ज्ञान सोइ ज्ञानको निदानी है ॥ ६० ॥

सवैया इकतीसा—भेष धरे लोगनिकों वंचे सो धरम ठग, गुरुसो कहावे गुरुवाई जाते चहियें । मंत्र तंत्र साधक कहावे गुनी जादूगर, पंडित कहावे पंडिताई जामें लहिये ॥ कवित्तकी कलामें प्रवीन सो कहावे कवि, बात कही जाने सो पबारगीर कहिये । ए तो सब विषेके भिखारी माया धारी जीव, इन्हकों विलोकिकें दयालरूप रहिये ॥ ६१ ॥

दोहा—जो दयालता भाव सो, प्रगट ज्ञानको अंग ।
पें तथापि अनुभौ दशा, वरतें विगत तरंग ॥ ६२ ॥
दरशन ज्ञानचरण दशा, करे एक जो कोइ ।
थिर व्हे साधे मोखमग, सुधी अनुभवी सोइ ॥ ६३ ॥

सवैया इकतीसा—जोइ दृग ज्ञान चरणातममें ठटि ठोर भयो निरदोर परवस्तुकों न परसे । सुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धतामें केलि करे, शुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा वरसे ॥ त्यागी तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमकों, करे थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसे । सोइ विकलप विजई अलप कालमांहि, त्यागि भो विधान निरवान पद दरसे ॥ ६४ ॥

चौपाई ।

गुन परजे में दृष्टि न दीजे । निरविकलपअनुभौरसपीजे॥
आपसमाइ आपमें लीजे । तनपा मेटि अपनपौकीजे ॥ ६५॥

दोहा—तजिविभावहुइजे मगन, सुद्धातम पदमांहि ।
एक मोष मारगयहे, और दूसरो नांहि ॥ ६६ ॥

सवैया इकतीसा—कइ मिथ्या दृष्टि जीव धारेजिन मुद्रा भेष, क्रिया में मगन रहे कहे हम जती हैं । अतुल अखंड मल रहित सदा उदोत, ऐसे ज्ञान भाव सों विमुख मूढ़ मति हैं ॥ आगम सँभाले दोष टाले विवहार भाले, पाले वृत्त यद्यपि तथापि अविरती हैं । आपुकों कहावे मोष मारग के अधिकारी, मोष सों सदीव रुष्ट दुष्ट दुरगति हैं ॥ ६७ ॥

दोहा—जे विवहारी मूढ़ नर, परजे बुद्धी जीव ।
तिनको बाहिज क्रीयको, है अवलम्बसदीव ॥ ६८ ॥

चौपाई ।

जैसे मुगध धान पहिचाने । तुष तंदुलको भेद नजाने ॥
तैसेमूढ़मती व्यवहारी । लखेन बंधमोष विधिन्यारी ॥ ६९ ॥

दोहा—कुमती बाहिज दृष्टिसों, बाहिज क्रिया करंत।
मानै मोष परंपरा, मन में हरष धरंत ॥ ७० ॥
शुद्धातम अनुभो कथा, कहे समकितीकोइ।
सो सुनिके तासोंकहे, यह शिवपंथ न होइ ॥ ७१ ॥

कवित्त—जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रवानहि। ते हिय अंध बंध के करता, परमतत्व को भेद न जानहि ॥ जिन्ह के हिये सुमतिकी कनिका, बाहिज क्रिया भेष परमानहि। ते समकिती मोष मारगमुख, करि प्रस्थान भव स्थिति भानहि ॥ ७२ ॥

सवैया इकतीसा—आचारिजकहे जिन बचनको विसतार, अगम अपार है कहेंगे हम कितनो। बहुत बोलबे सों न मकसूद चुप भली, बोलिये सु बचन प्रयोजनहै जितनो ॥ नाना रूप जलप सों नाना विकलप उठे, ताते जेतो कारिज कथन भलो तितनो। शुद्धपरमातमको अनुभौ अभ्यास कीजे, यहे मोषपंथ परमारथ है इतनो ॥ ७३ ॥

दोहा—सुद्धातम अनुभौ क्रिया, सुद्ध ज्ञान दृग दौर।
मुकतिपंथ साधन वहै, वाग जाल सब और ॥ ७४ ॥
जगत चक्षु आनन्दमय, ज्ञान चेतना भास।
निर्विकल्प सास्वतसुथिर, कीजेअनुभौ तास ॥ ७५ ॥
अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरन वीत ममत्व।
ज्ञानगम्य बाधा रहित सो है आतम तत्व ॥ ७६ ॥

इतिश्रीनाटकसमयसारविषैं दशमसरवविसुद्धिद्वारसंपूर्ण।

# ११ अध्याय स्याद्वादद्वार।

दोहा—सरव विसुद्धीद्वारयह, कह्यो प्रगट शिवपंथ।
कुंद कुंद मुनिराज कृत, पूरन भयो गरंथ ॥ ७७ ॥

चौपाई।

कुंद कुंद मुनिराज प्रवीना। तिन्ह यह ग्रंथ इहांलोंकीना ॥
गाथा वद्ध सुप्राकृतवानी। गुरु परंपरा रीति वखानी ॥७८॥
भयो ग्रंथ जगमें विख्याता। सुनत महासुख पावहिज्ञाता ॥
जे नवरस जगमांहि वखाने। ते सवरसमेंसारसमाने ॥ ७९ ॥

दोहा—प्रगटरूर संसारमें, नवरस नाटक होइ।
नवरस गर्वित ज्ञान में, विरला जानै कोइ ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा—सोभा में सिंगार बसै बीर पुरुषारथ में, हिये में कोमल करुनारस वखानिये। आनन्द में हास्य रुंड मुंड में विराजे रुद्र, बीभछ तहां जहां गिलान मन आनिये ॥ चिन्ता में भयानक अथाहता में अदभुत, माया की अरुचि तामें शान्त रस मानिये। येई नव रस भव रूप येई भाव रूप, इन्ह को विलेक्षण सु दृष्टि जग जानिये ॥ ८१ ॥

छप्पय छंद—गुन विचार सिंगार, वीर उद्दिम उदार रुष। करुना सम रसरीति, हासाहिरदे उछाह सुख ॥ अष्ट करम दल मलन, रुद्र बरते तिहि थानक। तन विलछ बीभक्ष, दुंद दुखदसा भयानक। अद्भुत अनंत बल चिंतवत, शांत सहज बैराग धुव ॥ नवरस विलास परगास तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव ॥ ८२ ॥

चौपाई ।

जब सुबोध घटमें परकासे । तव रस विरस विषमता नासे ॥
नवरस लखे एकरस मांही । तातेंविरसभाव मिटि जांही ८३॥

दोहा—सबरस गर्भित मूलरस, नाटक नाम गरंथ ।
जाके सुनत प्रवान जिय, समुझै पंथ कुपंथ ॥ ८४ ॥

चौपाई ।

बरते ग्रंथ जगत हितकाजा । प्रगटे अमृतचंद मुनिराज ॥
तब तिन्हग्रंथ जानिअति नीका।रची बनाइसंस्कृतटीका॥८५॥

दोहा—सर्व विशुद्धि द्वारलौं, आए करत वखान ।
तव आचारज भक्तिसों, करे ग्रंथ गुन गान ॥ ८६ ॥

चौपाई ।

अदभुत ग्रंथ अध्यातम वानी । समुझै कोऊ विरलाज्ञानी ॥
यामें स्यादवाद अधिकारा । ताकाजो कीजेविसतारा॥८७॥
तो गरंथ अति शोभा पावे । वह मंदिर यहकलसकहावे ॥
तबचितअमृतवचनगढखोले। अमृतचंदआचारजबोले॥८८॥

दोहा—कुंदकुंद नाटकविषे, कह्यो दरब अधिकार ।
स्यादवादनें साधिमें, कहों अवस्था द्वार ॥ ८९ ॥
कहों मुकतिपदकीकथा, कहों मुकतिकोपंथ ।
जैसे घृत कारज जहां, तहाँ कारन दधिपंथ ॥ ९० ॥

अर्थ स्पष्ट । चौपाई ।

अमृतचन्द बोले मृदुवानी । स्यादवादकी सुनो कहानी ॥
कोऊ कहै जीव जगमांही । कोऊकहैजीवहैनांही ॥ ९१ ॥

दोहा—एक रूप कोऊ कहै, कोऊ अगनित अंग ।
छिन भंगुर कोऊ कहै, कोऊ कहै अभंग ॥ ९२ ॥

नयअनंत इहबिधि कही; मिले न काहू कोइ ।
जो सब नय साधन करे, स्यादवादहै सोइ ॥ ९३ ॥
स्यादवाद अधिकार अब, कहों जैनकोमूल ।
जाके जाने जगतजन, लहै जगत जलकूल ॥ ९४ ॥

सवैया इकतीसा—शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीन के पराधीन, जीव एक है किधौ अनेक मानि लीजिये । जीव हे सदीव किधो नाहि हे जगतमांहि, जीव अवि नस्वर के नस्वर कही कीजिये ॥ सतगुरु कहे जीवहै सदीव निजाधीन, एक अविनस्वर दरव दृष्टि दीजिये । जीव पराधीन छिन भंगुर अनेक रूप, नांहि तहां जहां परजे प्रवान कीजिए॥९५॥

सवैया इकतीसा—दर्व खेत्र काल भाव चारो भेद वस्तुही में, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानियें । परके चतुष्क वस्तु नासाति नियत अंग, ताको भेद दर्ब परजाय मध्य जानिये ॥ दरवतो वस्तु खेत्र सत्ता भूमिकाल चाल, सुभाव सहज मूल सकति वखानिये । याही भांती परविकलप बुद्धि कलपना, विवहार दृष्टि अंशभेद परवानिये ॥ ९६ ॥

दोहा—है नाही नाही सु है, है है नाही नाहि ।
यह सरवंगी नयधनी, सबमाने सब मांहि ॥ ९७ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञानको कारन ज्ञेय आतमा त्रिलोक मेय, ज्ञेयसों अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छाही है । जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व दर्ब में विनाज्ञेय छेत्र ज्ञान जीव वस्तु नांही है ॥ देह नसे जीव नसें देह उपजत लसें, आतमा अचेतन है सत्ता अंसमांही है । जीव छिन भंगुर अज्ञायक सरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकंत अवस्था मूढ पाही है ॥ ९८ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ मूढ कहे जैसे प्रथम समारि भीति, पीछे ताके उपर सु चित्र आछो लेखिये । तैसे मूल कारन प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञान रूप कारज विशेषिये॥ ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसोई सुभाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिये । कारन कारज दोउ एकहीमें निहचे पें, तेरो मत साचो विवहार दृष्टि देखिये ॥ ९९ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समुझे त्रिलोक पिंड आतम दरव है । याहितें सुछंद भयौ डोले सुख हू न बोले, कहे याजगतमें हमारोई खरब है । तासों ज्ञाता कहे जीव जगतसों भिन्न पै, जगत को विकासी तोहि याहीतें गरवहै । जोवस्तुसो वस्तु पररूप सों निराली सदा, निहचे प्रमान स्यादवादमें सरवहै ॥ ५०० ॥

सवैया इकतीसा—कोउ पशु ज्ञानकी अनन्त बिचित्राई देखे, ज्ञेय को आकार नाना रूप विसतर्‍यो है । ताहीकों विचारी कहे ज्ञान की अनेक सत्ता, गहिके एकन्त पक्ष लोकनि सों लर्‍यो है ॥ ताको भ्रम भंजवे कों ज्ञानवन्त कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस भर्‍यो है । ज्ञायक सु भाई परजाई सों अनेक भयो, जद्यपि तथापि एकतासों नहिं टर्‍यो है ॥ १ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ कुधी कहे ज्ञानमांहि ज्ञेय को अकार, प्रति भासि रह्यो हे कलंक ताहि धोइए । जब ध्यान जल सों पखारि के धवल कीजे, सब निराकार शुद्ध ज्ञान मई होइए । तासों स्याद्वादी कहे ज्ञान को सुभाव यहे, ज्ञेय को आकार वस्तु नांहि कहा खोइए । जैसे

नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीसे जदपि तथापि आरसी बिमल जोइए ॥ २ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ अज्ञ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम, जोलों विद्यमान तौलों ज्ञान परगट है । ज्ञेय के विनाश होत ज्ञानको विनास होइ, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यात की अलट है ॥ तासों समकित वंत कहे अनुभौ कहान, परजे प्रवान ज्ञान नानाकार नट है । निरविकलप अविनस्वर दरब रूप, ज्ञान ज्ञेय वस्तु सों अव्यापक अघट है ॥ ३ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ मन्द कहे धर्म अधर्म आकास काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जग में । जाने न मरम निज मानें आपा पर बस्तु, वंधे दिढ़ करम धरम खोवे डग में ॥ समकिती जीव सुद्ध अनुभौ अभ्यासें तातें, परको ममत्व त्याग करे पगपग में । अपने सुभावमें मगनरहे आठों जाम, धारावाही पंथिक करावे मोख मगमें ॥ ४ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ सठ कहे जेतो ज्ञेयरूप परवान, तेतो ज्ञान तातें कहुं अधिक न और है । तिहूं कालपर क्षेत्र व्यापी परनयो माने, आपा न पिछाने ऐसी मिथ्या दृग दौर है ॥ जैन मती कहे जीव सत्ता परवान ज्ञान, ज्ञेयसों अव्यापक जगत सिर मोर है । ज्ञानकी प्रभामें प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय, जदपि तथापि थित न्यारी न्यारी ठौर है ॥ ५ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ शून्यबादी कहे ज्ञेयके विनास होत, ज्ञानको विनाश होइ कहो कैसे जीजिये । तातें जीवितव्यता की थिरता निमित्त अब, ज्ञेयाकार परिनमनिको नास की-

जियें ॥ सत्यवादी कहे भैया हूजें नाही खेद खिन, ज्ञेयसों विरचि ज्ञान भिन्न मानि लीजियें । ज्ञानकी शकति साधि अनुभौ दशा अराधि, करमकों त्यागिके परम रस पीजियें ॥६॥

सवैया इकतीसा—कोउ क्रूरकहे कायाजीव दोउ एक पिंड, जवदेह नसैगी तबहीं जीव मरेगो । छायाको सो छल किधों मायाको सो परपंच, कायामे समाइ फिरि कायाकों न धरेगो ॥ सुधी कहे देहसों अव्यापक सदीव जीव, समोपाइ परको मम-त्व परिहरेगो । अपने सुभाउ आइ धारना धरामे धाइ, आ-पुमें मगन व्हेके आपा शुद्ध करेगो ॥ ७ ॥

दोहा—ज्यों तन कंचुकि त्यागसों, विनसे नांहि भुयंग ।
त्यों शरीरके नासतें, अलख अखंडित अंग ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ दुरबुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उपज्यो हे अब आइके । जोलों देह तोलों देहधा री फिर देह नसे, रहेगो अलख ज्योति ज्योतिमें समाइके ॥ सदबुद्धी कहे जीव अनादिको देह धारी, जब ज्ञान होइगो कवहीं काल पाइके । तबही सो पर तजि अपनो सरूप भजि, पावैगो परम पद करम नसाइके ॥ ९ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ पक्षपाती जीव कहे ज्ञेयके आकार, परिनयो ज्ञान तातें चेतना असतहे । ज्ञेयके नसत चेतनाकौ नास ता कारन, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥ पंडि-त कहत ज्ञान सहज अखंडितहे, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों बिरतहे । चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रवान जीवतत है ॥ १० ॥

सवैया इकतीसा—कोउ महा मूरख कहत एक पिंडमांहि,

जहांलों अचित चित अंग लहलहे है । जोगरूप भोगरूप नानाकारज्ञेयरूप, जेतेभेद करमके तेतेजीव कहेहै ॥ मतिमान कहे एक पिंडमांहि एक जीव, ताहीके अनंत भाव अंस फैलि रहेहै । पुग्गलसें भिन्नकर्म जोगसों अखिन्नसदा, उपजे विनसे थिरता सुभाव गहे है ॥ ११ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ एक छिनवादी कहे एक पिंडमांहि, एक जीव उपजत एक विनसतुहै । जाही समै अंतर नवीनि उतपति हुइ, ताही समै प्रथम पुरातन वसतुहै ॥ सरवंग वादी कहे जैसे जलवस्तु एक, सोंइ जलविविध तरंगनि लसतुहै । तैसें एक आतम दरब गुनपरजेसों, अनेक भयो पैं एक रूप दरसतु है ॥ १२ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ वालवुद्धि कहे ज्ञायकसकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये । ज्ञायक सकति काल पाई मिटि जाई जब, तव अविरोध बोध बिमल बखानिये ॥ परम प्रवीन कहे ऐसी न तो बनें वाही, जैसे विनु परगास सूरजन मानिये । तैसें विनु ज्ञायक सकति न कहावे ज्ञान, यहतो न पक्ष परतक्ष परवानिये ॥ १३ ॥

दोहा—इहविधि आतम ज्ञानहित, स्यादबाद परवान ।
जाके बचन विचार सों, मूरख होइसुजान ॥ १४ ॥
स्यादबाद आतम सदा, ताकारन बलवान ।
शिव साधक वाधा रहित, अखअखंडित आन ॥ १५ ॥
स्यादवाद अधिकारयह, कह्यो अलपविसतार ।
अमृत चंद मुनिवर कहे, साधक साधि दुवार ॥ १६ ॥

इति श्री नाटक समयसार विषै ग्यारवां स्याद्वाद द्वार समाप्तः ।

# १२ अध्याय साध्य साधक द्वार

सवैया इकतीसा—जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अजोगी अमूरतिक परदेशवंतहै । उतपतिरूप नाश रूप अविचल रूप, रतनत्रयादि गुण भेदसों अनंत है ॥ सोई जीव दरब प्रवान सदा एकरूप, ऐसो शुद्ध निहचें सुभाउ बिरतंत है । स्यादवाद मांहि साधि पद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेकों साधक सिधंत है ॥ १७ ॥

दोहा—साधि शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत ।
साधक अबिरत आदि बुध, छीन मोह परजंत ॥ १८ ॥

सवैया इकतीसा—जाको अधो अपूरव अनवर्त्ति करनको, भयो लाभ भई गुरु वचनकी बोहनी । जाके अनंतानुबंध क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी ॥ सातों पराकिति खपी किंवा उपसमी जाके, जगी उरमांही समकित कला सोहनी । सोइ मोक्ष साधक कहायो ताके सरवंग, प्रगटी शगतिगुन थानक आरोहनी ॥१९॥

सोरठा—जाको सुगति समीप, भई भव स्थिति घट गई ।
ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन ॥ २० ॥

दोहा—ज्यों बरषे बरषा समे, मेघ अखंडित धार ।
त्यों सदगुरु वानी खिरें, जगत् जीव हितकार ॥ २१ ॥

सवैया तेईसा—चेतनजी तुमजागि विलोकहू, लाग रहे कहांमाया कि तांई । आय कहींसुँ कहींतुम जाउगे, माया रहेगि जहां कि तहांई ॥ मायातुह्मारि न जाति न पाति न वंस कि वेल

न अंस कि झांई । दासि किए बिनु लातनि मारत, ऐसि अनीति न कीजे गुसांई ॥ २२ ॥

दोहा—माया छाया एक हैं, घटे बढ़े छिनमांहि ।
इन्हकी संगति जे लगे, तिनहिंकहूं सुखनांहि ॥ २३ ॥

सवैया तेईसा—लोगनिसों कछु नांतो न तेरो, न तोसों कछू इह लोगको नांतो । ए तो रहे रमि स्वारथ के रस, तूं परमारथ के रस मातो ॥ ए तन सों तन में तन से जड़, चेतन तूं तनसों नित हांतो । होहि सुखी अपनो बल तोरिकें, रागविराग विरोधको तांतो ॥ २४ ॥

सोरठा—जे दुरबुद्धी जीव, ते उतंग पदवी चहे ।
जे समरसीसदीव, तिन्हको कछू न चाहिये ॥ २५ ॥

सवैया इकतीसा—हांसीमें विषाद बसे विद्या में विवाद बसे, कायामें मरन गुरुवर्त्तन में हीनता । सुचि में गिलान बसे प्रापति में हानि बसे, जैमें हारि सुंदर दशा में छवि छीनता ॥ रोग बसे भोगमें संयोग में वियोग बसे, गुन में गरब बसे सेवा मांहि दीनता । और जगरीति जेती गर्भित असाता सेती, साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥२६॥

दोहा—जिहिउतंगचढ़िफिरिपतन, नहिंउतंगवहिकूप ।
जिहिसुखअंतरभयबसे, सो सुख है दुखरूप ॥ २७ ॥
जो विलसे सुख संपदा, गये ताहि दुख होइ ।
जोधरतीबहु त्रिणवती, जरे अगनिसों सोइ ॥ २८ ॥

इति गुरु उपदेश समाप्तः ।

सपदमांहि सतगुरुकहे, प्रगटरूप जिन धर्म ।
सुनत बिचक्षण संदहे, मूढ़ न जाने मर्म ॥ २९ ॥

सवैया तेईसा—जैसे काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरको । दोउ फिरें पुरके समीप परे कुवटमें, काहू ओर पंथिककों पूछे पंथपुरको ॥ सोतो कहे तुह्मारो नगर हे तुमारे ढिग, मारग दिखावे समुझावे खोज पुरको । एते पर सुष्ट पहिचाने पें न माने दुष्ट, हिरदे प्रवान तैसे उपदेश गुरुको ॥ ३० ॥

सवैया इकतीसा—जैसे काहू जंगलमें पावसको समो पाई अपने सुभाई महा मेघ वरषतु है । आमल कषाय कटु तीछन मधुर षार, तैसो रस वाढें जहां जैसो दरषतु है ॥ तैसो ज्ञानवंत नर ज्ञानको बखान करे, रसको उमाहो है न काहू परषतु है । वहे धुनि सुनि कोउ गहे कोउ रहे सोई, काहू कों विषाद होई कोउ हरषतु है ॥ ३१ ॥

दोहा—गुरु उपदेश कहा करे, दुराराधि संसार ।
वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥ ३२ ॥
डूंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रोचक शुद्ध ।
ऊंघा दुरबुद्धी विकल, घूंघा घोर अबुद्ध ॥ ३३ ॥
जाकी परम दशा विषे, करम कलंक न होइ ।
डूंघा अगम अगाध पद, वचन अगोचर सोइ ॥ ३४ ॥
जे उदास व्है जगतसों, गहे परम रस पेम ।
सो चूंघा गुरुके बचन, चूंघे बालक जेम ॥ ३५ ॥
जो सुबचन रुचिसों सुनें, हिए दुष्टता नांहि ।
परमारथ समुझै नही, सो सूंघा जगमांहि ॥ ३६ ॥
जाकों विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट ।
सो ऊंघा विषई विकल, दुष्ट रिष्ट पापिष्ट ॥ ३७ ॥

जाकेश्रवन बचन नही, नहिमन सुरति विराम ।
जडता सो जडवत भयो, घूंघा ताको नाम ॥ ३८ ॥

चौपाई ।

डूंघा सिद्ध कहे सब कोऊ । सुंघा उंघा मूरख दोऊ ।
घूंघा घोर बिकल संसारी । चूंघा जीव मोख अधिकारी ॥३९॥

दोहा—चूंघा साधक मोक्षको, करे दोष दुख नास ।
लहे पोष संतोष सों, वरनो लक्षन तास ॥ ४० ॥
कृपा प्रसम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग ।
ए लक्षन जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग ॥ ४१ ॥

चौपाई ।

जूवा आमिष मदिरा दारी । आषेटक चोरी पर नारी ॥
एई सात व्यसन दुखदाई । दुरितमूलदुर्गतिके भाई ॥ ४२ ॥

दोहा—दर्वित ए सातों व्यसन, दुराचार दुखधाम ।
भावित अंतर कलपना, मृषा मोह परिनाम ॥ ४३ ॥

सवैया इकतीसा—अशुभमें हारि शुभ जीति यहे दूतकर्म देहकी मगनताई यहे मांस भखिबो । मोहकी गहलसों अजाने यहे सुरापान, कुमतिकीरीति गनिकाको रस चखिबो ॥ निरदे व्है प्राण घात करिवो यहे सिकार, परनारी संग पर बुद्धिको परखिबो । प्यारसों पराई सोंज गहिबेकीचाह चोरी, येई सातोंव्यसन बिडारि ब्रह्म लखिबो ॥ ४४ ॥

दोहा—विसन भाव जामें नहीं, पौरुष अगम अपार ।
किये प्रकट घटसिंधुमथि, चौदहरतनउदार ॥ ४५ ॥

सवैया इकतीसा—लक्ष्मी, सुबुद्धि, अनुभूति, कौस्तुभमणि, वैराग कलपवृक्ष, संत सुबचन है । ऐरावत, उद्यिम

प्रतीति रंभा, उदैविष, कामधेनु, निर्भरा सुधाप्रमोद घनहै॥ ध्यान चाप प्रेम रीति मदिरा विवेक वैद्य शुद्धभाव चन्द्रमा तुरंगरूप मन है। चौदह रतन ये प्रकट होइ जहां तहां, ज्ञान के उदोत घट सिंन्धुको मथन है ॥ ४६ ॥

दोहा—किये अवस्थामें प्रकट, चौदह रतन रसाल।
कछु त्यागे कछु संग्रहे, विधि निषेधकीचाल ॥ ४७॥
रमा संष विष धनु सुरा, वेद धेनु हय हेय।
नति रंभा गज कल्पतरु, सुधा सोम आदेय ॥ ४८ ॥
इह विधिजो परभाव विष, वमे रमे निजरूप।
सो साधक शिवपंथको, चिदविवेक चिद्रूप ॥ ४९ ।

कवित्त छन्द—ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर, निरखे दरव सुगुन परजाइ। जिन्हके सहजरूप दिनदिन प्रति, स्यादवाद साधन अधिकाइ॥ जे केवल प्रतीत मारग मुख, चिते चरन राखें ठहराइ। ते प्रवीन करि छिन्न मोह मल, अविचल होइ परमपद पाइ ॥ ५० ॥

सवैया इकतीसा—चाकसो फिरत जाकों संसार निकट आयो, पायो जिनि सम्यक मिथ्यात नाश करिके। निर-दुंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिनि, कीनी मोख कारन अवस्था ध्यान धारिके॥ सोई शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविना-शी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गारिके। मिथ्यामति आपनो सरूप न पिछाने तामें, डोले जग जालमें अनंत काल भारिके ॥ ५१ ॥

सवैया इकतीसा—जे जीव दरबरूप तथा परजायरूप, दोउ नै प्रवान वस्तु शुद्धता गहतहै। जे अशुद्धभावनिके त्यागी

भए सरबथा, बिषेसों विमुख व्है बिरागता चहत है ॥ जो ग्राहजभाव त्यागभाव दुहूं भावनिको, अनुभौ अभ्यासविषे एकता कहत है । तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोख, मारगके साधक अबाधक महतहै ॥ ५२ ॥

दोहा—विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोष ।
ता परनतिकौं बुध कहे, ज्ञान क्रियासों मोष ॥ ५३ ॥
जगी शुद्ध समकित कला, बगी मोखमग जोइ ।
बहे करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ ॥ ५४ ॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम ।
जैसे दीपक जो धरे, सो उजियारो धाम ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकारगयो, भयो परगास सुद्ध समकित भानको । जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी, जान्यो जिन मरम अबाची भगवानको ॥ जाको ज्ञान तेज बग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोष समरस सुधा पानको । ताही सु विचक्षन को संसार निकट आयो, पायो तिनि मारग सुगम निरवानको ॥ ५६ ॥

सवैया इकतीसा—जाके हिरदेमें स्याद्बाद साधना करत, शुद्ध आतमाको अनुभौ प्रगट भयो है । जाकों संकलप विकलपके विकार मिटि, सदा काल एकी भाव रस परिनयोहै ॥ जिनि बंध बिधि परिहार मोख अंगीकार, ऐसो सुविचार पक्ष सोउ छांडि दयो है ॥ जाकी ज्ञानमहिमा उदोत दिन दिन प्रति, सोइ भवसागर उलंघि पार गयो है ५७ ॥

सवैया इकतीसा—अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहिये । दीसे एक नैकी प्र-

तिक्षनी अपर दूजी, नैकों नै दिखाइ बाद विवादमें रहिये ॥ थिरता न होइ विकलपकी तरंगनिमें, चंचलता वढ़े अनुभौ दशा न लहिये । तातें जीव अचल अबाधित अखंड एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये ॥ ५८ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे एक पाको आंवफल ताके चारि अंस, रसजाली गुठली छीलक जब मानिये । यों तो न बनें पें ऐसें बने जैसें वहै फल, रूपरस गंध फास अखंड प्रवानिये ॥ तैसें एक जीवकों दरव क्षेत्र कालभाव, अंस भेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये। दर्व रूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप, चारों-रूप अलख अखंड सत्ता मानिये ॥ ५९ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ ज्ञानवान कहे ज्ञान तो हमारोरूप, ज्ञेयषटदर्व सो हमारो रूप नांही है । एकनै प्रवान ऐसें दूजी अब कहों जैसें, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही है ॥ तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप सकति अनंत मुझ पाही है। ता कारण वचनके भेद भेद कहों कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको बिलास सत्ता माहीं है ॥ ६० ॥

चौपाई ।

स्वपर प्रकाशक सकति हमारी। तातें वचन भेद भ्रमभारी ॥
ज्ञेयदसा द्विविधा परगासी। निजरूपा पररूपा भासी ॥ ६१ ॥

दोहा—निजरूपा आतम सकति, पररूपा परवस्त ।
जिनि लखि लीनो पेच यह, तिनि लिखलियो समस्त ॥ ६२ ॥

सवैया इकतीसा—करम अवस्थामें अशुद्धसो विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंगहे । उभे नै प्रवान समकाल शुद्धाशुद्धरूप, ऐसो परजाइ धारी जीव नाना रंग है ॥

एकही समेमें त्रिधारूप पें तथापि याकी, अखंडित चेतना सकति सरवंगहै। यहे स्याद्वाद याको भेद स्याद्वादी जानें, मूरख न मानें जाको हियो दृग भंगहै ॥ ६३ ॥

सवैया इकतीसा—निहचे दरव दृष्टि दीजें तब एकरूप, गुनपरनति भेद भावसों बहुत है । असंख प्रदेश संयुगत सत्ता परबान, ज्ञानकी प्रभासों लोकालोक मानजुत है ॥ परजे तरंगनिके अंग छिन भंगुरहै, चेतना सकति सो अखंडित अचुत है । सोहे जीव जगति विनायक जगत सार, जाकी मौज महिमा अपार अदभुत है ॥ ६४ ॥

सवैया इकतीसा—विभाव सकति परिनतिसों विकल दीसें, सुद्ध चेतना विचारतें सहज संतहै । करम संयोग सों कहावे गतिको निवासी, निहचें सरूप सदा मुकत महंतहै ॥ ज्ञायक सुभाउ धरे लोकालोक परगासी, सत्ता परवान सत्ता परगासवंतहै । सोहे जीव जानत जहां न कौतुकी महान, जाके कीरति कहान अनादि अनंत है ॥ ६५ ॥

सवैया इकतीसा—पंच परकार ज्ञानावरनको नास करि, प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है । ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धारि, अनेक भई पें एकतामें रसपगीहै॥ याही भांति रहेगी अनंत कालपरजंत, अनंत शकति फोरि-अनंतसों लगीहै । नरदेह देवलमें केवलसें रूप सुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सिखा समाधि जगी है ॥ ६६ ॥

सवैया इकतीसा—अक्षर अरथ में मगन रहै सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा कांम गविकी । अमल अबाधित अलख गुन गावना है, पावना परमशुद्ध भावनाहै भविकी॥

मिथ्यात तिमर अपहार वर्द्धमान धारा, जैसी उभै जाम लौं किरन दीपे रविकी । ऐसीहै अमृत चंदकला त्रिधारूप धरे, अनुभौ दशा गरंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ६७ ॥

दोहा—नाम साधि साधक कह्यो, द्वार द्वादसमठीक ।
समयसार नाटक सकल पूरन भयो सटीक ॥ ६८ ॥

इतिश्रीनाटकसमयसारविषैंसाध्यसाधकनामाबारमांद्वारसंपूर्णम् ।

दोहा—अब कविजन पूरनदशा, कहै आपसों आप ।
सहज हरष मन में धरै, करै न पश्चाताप ॥ ६९ ॥

सवैया इकतीसा—जो मैं आप छांड़ि दीनो पररूप गहि लीनो, कीनो न बसेरो तहां जहां मेरो थल है । भोगनि को भोगी रहि करमको कर्ता भयो, हिरदे हमारे राग दोष मोह मल है । ऐसी विपरीति चाल भई जो अतीति काल, सो तो मेरी क्रिया की ममत्वताको फल है । ज्ञान दृष्टि भासी भयो क्रिया सों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रा में सुपन को सो छल है ॥ ७० ॥

दोहा—अमृतचन्द मुनिराज कृत, पूरन भयो गरंथ ।
समयसार नाटक प्रकट पंचमगतिको पंथ ॥ ७१ ॥

इतिश्रीसमयसारनाटकग्रंथअमृतचंदआचार्यकृतसंपूर्णम् ।

दोहा—जाकी भगति प्रभावसो, कीनोग्रंथ निबाहि ।
जिनप्रतिमा जिनसारखी, नमैबनारसिताहि ॥ ७२ ॥

सवैया इकतीसा—जाके मुख दरस सों भगत के नैननि

कों, थिरता की बानी चढ़ी चंचलता बिनसी । मुद्रा देखे केवलीकी मुद्रा यादि आवे जहां, जाके आगें इंद्रकी विभूति दिसे तिनसी ॥ जाको जस जंपत प्रकास जगे हिरदेमें, सोई सुद्ध मती होइ हुती जो मलिनसी । कहत बनारसी सु महिमा प्रकट जाकी, सोहे जिन की सबी है विद्यमान जिनसी ॥ ७३ ॥

सवैया इकतीसा—जाके उर अंतर सुदृष्टिकी लहरिलसी, बिनसी मिथ्यात मोह निद्राकी समारषी । सैली जिन सासनकी फैली जाके घट भयो, गरबको त्यागी षट दरबको पारषी ॥ आगम के अच्चर परे है जाके श्रवणमें, हिरदे भंडार में समानी बानी आरषी । कहत बनारसी अलप भवस्थित जाकी, सोइ जिन प्रतिमा प्रवाने जिन सारषी ॥ ७४ ॥

चौपाई ।

जिन प्रतिमाजन दोष निकंदे । सीस नमाइ बनारसि बंदे
फिरिमनमांहि विचारे ऐसा । नाटकग्रंथ परमपद जैसा॥७५॥
परम तत्व परचे इस मांही । गुन थानककी रचना नांही॥
यामें गुनथानक रस आवे । तो गरंथ अतिशोभापावे॥७६॥

दोहा—यह विचारि संछेपसों, गुनथानक रस योज ।
बरनन करे बनारसी, कारन शिव पथ खोज ॥ ७७ ॥
नियत एक विवहारसों, जीव चतुर्दश भेद ।
रंग जोग बहुविधि भयो, ज्यूंपट सहजसुपेद ॥ ७८ ॥

सवैया इकतीसा—प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र चतुरथो अव्रत पंचमो व्रतरंच है । छठो परमत्त सातमो अपरमतनाम, आठमो अपूरब करनसुख संचहै ॥ नौमो

अनिवर्त्त भाव दशमो सूक्ष्मलोभ, एकादशमो सु उपसंत मोह वंषहै । द्वादशमो क्षीन मोह तेरहों सजोगी जिन, चौदहों अजोगी जाकी थिति अंक पंच है ॥ ७९ ॥

दोहा—वरने सबगुन थानके, नाम चतुर्दश सार ।
अब बरनों मिथ्यातके, भेद पंच परकार ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा—प्रथम एकंत नाम मिथ्यात अभिग्रहीक, दूजो विपरित अभिनिवेसिक गोत है । तीजो विनै मिथ्यात अनाभिग्रह नाम जाको, चौथो संसे जहां चित भोरकोसो पोत है ॥ पंचमो अज्ञान अनाभोगिक गहलरूप, जाके उदे चेतन अचेतनसो होत है । ए पांचो मिथ्यात भ्रमावे जीवको जगतमें, इन्हके विनास समकितको उदोत है ॥ ८१ ॥

दोहा—जो इकंत नय पक्ष गहि, छके करावे दक्ष ।
सो इकंत वादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष ॥ ८२ ॥
ग्रंथ उकति पथ उक्षपे, थापे कुमत सुकीय ।
सुजस हेत गुरुता ग्रहे, सो विपरीती जीय ॥ ८३ ॥
देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, गिनें समान जु कोइ ।
नमेंभगतियों सबनिको,विनयमिथ्यातीसोइ ॥ ८४ ॥
जो नाना विकलप गहे, रहे हिए हैरान ।
थिर व्हे तत्व न सद्दहे, सो जिय संसयवान ॥ ८५ ॥
जाको तन दुखदहलसों, सुरतिहोति नहिंरंच ।
गहलरूप वरते सदा, सो अज्ञान तिरयंच ॥ ८६ ॥
पंचभेद मिथ्यातके, कहे जिनागम जोइ ।
सादिअनादि सरूपअब, कहों अवस्थादोइ ॥ ८७ ॥

जो मिथ्या दल उपसमे, ग्रंथ भेद बुधि होइ।
फिरि आवे मिथ्यातमें, सादि मिथ्याती सोइ ॥ ८८॥
जिनि गरंथि भेदी नही, ममता मगन सदीव।
सोऽनादि मिथ्यामती, बिकल बहिर्मुखजीव ॥ ८९॥
कह्योप्रथमगुण थानयह, मिथ्यामतअभिधान।
अलप रूप अवबरनवुं, सासादन गुन थान ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसा—जैसें कोउ क्षुधित पुरुष खाइ खीर खांड, वोम करे पीछे के लगार स्वाद पावे है। तैसे चाढ़ि चौथे पांचएके छडे गुनथान, काहु उपसमीको कषाइ उदे आवे है ॥ ताहि समे तहां गिरें परधान दशा त्यागी, मिथ्यात अवस्थाकों अधोमुख व्है धावे है। वीच एक समे वा छ आवली प्रमान रहै, सोइ सासादन गुनथानक कहावे है॥ ९१ ॥

दोहा—सासादन गुन थान यह, भयो समापत बीय।
मिश्र नाम गुन थानअब, बरनन करों त्रितीय ॥ ९२ ॥

सवैया इकतीसा—उपसमी समकिती केतो सादि मिथ्यामती, दुहूनिको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे है। अनंतानुबंधी चोकरीको उदे नांही जामे, मिथ्यात समे प्रकृति मिथ्यात न रहेहै ॥ जहां सद्दहन सत्यासत्यरूप समकाल, ज्ञान भाव मिथ्याभाव मिश्र धारा वहेहै। जाकी थिति अंतर मुहूरत वा एक समे, ऐसो मिश्र गुन थान आचारज कहेहै ॥९३॥

दोहा—मिश्र दशा पूरन भई, कही यथा मति भाषि।
अथ चतुर्थगुनथानविधि, कहोंजिनागम साषि ॥ ९४ ॥

सवैया इकतीसा—केई जीव समकितपाय अर्ध पुद्गल, परावर्त्त काल तांई चोखे होइ चित्त के। कोई एक अंतर

मुहूरतमें ग्रंथि भेदि, मारग उलंघि सुखवेदे मोख वितके॥ तातें अंतर मुहूरतसों अर्द्ध पुद्गललों, जेते समें होंही तेते भेद समकितके। जाही समे जाको जब समकित होई सोई, तबहीसों गुन गहे दोष दहे इतके ॥ ९५॥

दोहा—अथ अपूर्व अनवर्त्ति त्रिक, करन करे जोकोइ।
मिथ्या ग्रंथि बिदार गुन, प्रगटे समकित सोइ ॥ ९६ ॥
समकित उतपति चिन्हगुन, भूषनदोषविनास।
अतीचार जुतअष्ट विधि, वरनों विवरन तास ॥ ९७॥

चौपाई।

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी। दिनदिन रीतिगहे समताकी॥
छिन छिन करेसत्यको साको। समकितनांउकहावेताको॥९८॥

दोहा—केतो सहज सुभाउको, उपदेशे गुरु कोइ।
चिहुँ गतिसेंती जीवकों, सम्यक् दरशन होइ॥ ९९ ॥
आपा पर परचे विषे, उपजे नहिं संदेह।
सहजप्रपंचरहित दशा, समकित लक्षण एह ॥ ६०० ॥
करुना वछल सुजनता, आतमनिंदा पाठ।
समता भगति विरागता, धरमराग गुनआठ॥ १ ॥
चित प्रभावना भावजुत, हेय उपादयवानि।
धीरज हरष प्रवीनता, भूषन पंच वखानि॥ २ ॥
अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष।
तीन मूढता संजुगत, दोष पचीसी एष॥ ३ ॥
जाति लाभकुल रूपतप, वलाविद्या अधिकार।
इन्हकोगरवजु कीजिये, यह मद अष्टप्रकार॥ ४ ॥

चौपाई ।

आसंका अस्थिरता बांछा । ममता दृष्टि दसा दुरगंछा ।
बत्सल रहित दोष परभाषे । चित्तप्रभावनामांहि नराषे ॥ ५ ॥

दोहा—कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म ।
इनकी करे सराहना, यह षडायतन कर्म ॥ ६ ॥
देव मूढ़ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष ।
आठ आठ षटतीनि मिलि,एपचीससबदोष ॥ ७ ॥
ज्ञान गर्व मतिमंदता, निठुर वचन उदगार ।
रुद्रभाव आलस दसा, नास पंच परकार ॥ ८ ॥
लोग हास भय भोगरुचि,अग्रसोच थितचेव ।
मिथ्या आगमकी भगति,मृषा दरसनी सेव ॥ ९ ॥

चौपाई ।

अतीचार ए पंच प्रकारा । समलकरहि समकितकी धारा ॥
दूषनभूषनगतिअनुसरनी । दसाआठसमकितकी बरनी ॥ १० ॥

दोहा—प्रकृति सात अब मोहकी,कहों जिनागम जोइ ।
जिन्हको उदै निवारिके,सम्यक दरशन होइ ॥ ११ ॥

सवैया इकतीसा—चारित मोहकी चारि मिथ्यातकी तीनि तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी । बीजी महामान रस भीजी माया भई तीजी, चौथी महालोभ दसा परिगह पोहनी ॥ पांचइ मिथ्यातमति छठी मिश्र परनति, सातई समै प्रकृति समकित मोहनी । एई षट बिंग बनितासी एक कुतियासी, सातो मोहप्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ १२ ॥

छप्पय छन्द—सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंडित । सातप्रकृति छय करन, हार छायकी अखंडित ॥ सात

मांहि कछु षिपहि, कछुक उपसम करि रक्खे। सो छय उपसमवंत, मिश्र समकित रस चक्खे। पट प्रकृति उपशमइ वा षिपइ, अथवा छय उपशम करे। सातई प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरे॥ १३ ॥

दोहा—छय उपसम वरते त्रिविध, वेदक चार प्रकार।
छायक उपशम जुगलयुत, नौधासमकितधार॥ १४ ॥
चारिषिपहित्रयउपसमहि, पणषयउपसमदोइ।
षै षट उपसम एक यों, षय उपसम त्रिकहोइ॥ १५ ॥
जह्यांचारि प्रकरती षिपहिं, द्वे उपसम इकवेद।
षय उपसम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद॥ १६ ॥
पंच षिपे इक उपसमै, इक वेदे जिहि ठौर।
सो षय उपसम वेदकी, दशा दुतिय यह और॥ १७ ॥
षय षट वेदे एक जो, ष्यायक वेदक सोइ।
षटउपसमइकप्रकृतिविद, उपसमवेदकहोइ॥ १८ ॥
खायक उपसमकी दशा, पूरव षट पद मांहि।
कहीप्रगट अब पुनरुकति, कारन वरनीनांहि॥ १९ ॥
षयउपसमवेदकषिपक, उपसमसमकितचारि।
तीनचारिइकइकमिलत, सव नव भेद विचारि॥ २० ॥

सोरठा—अवनिहचे विवहार, अरुसामान्य विशेषविधि।
कहौं चारि परकार, रचना समकित भूमिकी॥ २१ ॥

सवैया इकतीसा—मिथ्या मति गांठि भेद जगी निरमल ज्योति, जोगसों अतीत सोतो निहचे प्रवानिये, वहे दुन्द दसासों कहावे जोग मुद्रा धरे, मति श्रुति ज्ञान भेद विवहार मानिये॥ चेतना चिहन पहिचान आपपर वेदे, पौरुष

अलप ताते समान बखानिये । करे भेदाभेदको विचार विसताररूप, हेय गेय उपादेयसों विशेष जानिये ॥ २२ ॥

सोरठा—थिति सागरते तीस, अन्तरमुहुरत एकवा।
अविरतिसमकिति रीस,यहचतुर्थ गुनथानइति ॥२३॥

दोहा—अब बरनो इकवीसगुन, अरु बावीसअभक्ष्य ।
जिन्हके संग्रह त्यागसों, सोहे श्रावक पष्य ॥ २४ ॥

सवैया इकतीसा—लज्जावन्त दयावन्त प्रसन्त प्रतीतवन्त, परदोषको ढकैया पर उपकारी है । सोम दृष्टि गुन ग्राही गरिष्ट सबको इष्ट, सिष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरग विचारी है ॥ विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, नदीन न अभिमानी मध्य विवहारी है । सहजै विनीत पाप क्रिया सों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुनधारी है॥ २५॥

कवित्त छन्द—ओरा घोरवरा निसभोजन, बहु बीजा वेंगन सन्धान । पीपर वर उँबरि कठूँबरी, पाकर जो फल होइ अजान ॥ कन्दमूल माटी विप आमिष, मधु माखन अरु मदिरापान । फल आति तुच्छ तुसार चलित रस, जिनमत ए बावीस अखान ॥ २६ ॥

दोहा—अब पंचम गुनथानकी, रचना बरनो अल्प ।
जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ॥ २७ ॥

सवैया इकतीसा—दंसन विशुद्धकारी बारह विरतधारी, सामायकचारी पर्व पोसह विधि वहे । सचित्तको परिहारी दिवा अपरस नारी, आठोजामें ब्रह्मचारी निरारम्भी व्हैरहे॥ पाप परिग्रह छंडे पापकी न शिक्षा मंडे, कोउ याके निमित्त

करे सो वस्त न गहे । एते देस ब्रतके धरैया समकिती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिन्हे भगवन्तजी कहे ॥ २८ ॥

दोहा—संयम अंसजग्योजहां, भोग अरुचि परनाम ।
उदे प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥ २९ ॥
आठ मूलगुण संग्रहे, कुवसन क्रिया न कोइ ।
दर्शन गुन निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोइ ॥ ३० ॥
पंच अनुब्रत आदरे, तीन गुण ब्रत पाल ।
सिक्षा ब्रत च्यारो धरे, यह ब्रत प्रतिमा चाल ॥ ३१ ॥
दर्वभाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक ।
तजि ममता समता गहे, अंतर मुहुरत एक ॥ ३२ ॥

चौपाई ।

जो अरिमित्र समान विचारै । आरत रुद्र कुध्यान निवारै ।
संजमसहित भावना भावे । सो सामायकवंतकहावे ॥३३॥

दोहा—सामायक कीसी दसा, चार पहर लों होइ ।
अथवा आठपहररहे, पोसह प्रतिमा सोइ ॥ ३४ ॥
जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर ।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥ ३५ ॥

चौपाई ।

जो दिन ब्रह्मचर्य ब्रतपाले । तिथिआयेनिशिद्यौस सँभाले॥
गहिनौवाडीकरै ब्रत रक्षा । सोषटप्रतिमासाधकअक्षा॥३६॥
जोनवबाडिसहितबिधि साधे । निशिदिन ब्रह्मचर्यआराधे ॥
सोसप्तमप्रतिमाधरज्ञाता।शीलाशिरोमनिजगताविख्याता३७

कवित्त छंद—तिय थल बास प्रेम रुचि निरखन, दे परीक्ष भाषन मधु वेन । पूरबभोग केलि रसचिन्तन, गुरुआहार

लेत चित चेन ॥ करिसुचितन शृंगार बनावत, तिय परयंक मध्य सुखसेन । मन मथ कथा उदर भरि भोजन, ए नव वाडि जान मतजेन ॥ ३८ ॥

दोहा—जो विवेक विधि आदरे, करे न पापा रंभ ।
सो अष्टम प्रतिमाधनी कुगति विजे रनथंभ ॥ ३९ ॥

चौपाई ।

जो दसधा परिग्रहको त्यागी । सुख संतोष सहज बैरागी ॥
समरसचिंतितकिंचितग्राही । सोश्रावकनौप्रतिमावाही॥४०॥

दोहा—परकों पापा रंभ को, जो न देइ उपदेश ।
सोदशमीप्रतिमासहित, श्रावकविगतकलेश॥ ४१ ॥

चौपाई ।

जो सुछन्द बरतें तजि डेरा । मठ मंडप महिंकरे बसेरा ॥
उचित अहार उदंड बिहारी । सोएकादश प्रतिमाधारी॥४२॥

दोहा—एकादश प्रतिमादशा, कही देशब्रत मांहि ।
वही अनुक्रम मूलसों, गही सु छूटी नांहि ॥ ४३ ॥
षट प्रतिमा तांई जघन, मध्यम नव परजंत ।
उत्तम दशमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ४४॥

चौपाई ।

एक कोटि पूरव गनिलीजें । तामें आठ बरष घट कीजै ॥
यहउत्कृष्टकाल थिति जाकी । अंत मुहूर्त्त जघन्य दसाकी४५॥

दोहा—सत्तरिलाख करोड़मिति,छप्पन सहस करोड़ि ।
एते बरष मिलाइ करि, पूरब संख्या जोड़ि ॥ ४६ ॥
अंतर मुहुरत द्वै घडी, कछुक घाटि उतकृष्ट ।
एक समे एकाउली, अंत मुहूर्त्त कनिष्ट ॥ ४७ ॥

यह पंचम गुनथानकी, रचना कही विचित्र ।
अब छट्टम गुनथानकी, दसा कहूं सुनु मित्र ॥ ४८ ॥
पंचप्रमाद दशा धरे, अट्ठाइस गुनवान ।
थविर कल्पजिन कल्पजुत, हेप्रमत्त गुनथान ॥ ४९ ॥
धरमराग बिकथाबचन, निद्राविषय कषाइ ।
पंच प्रमाद दसासहित, परमादी मुनि राइ ॥ ५० ॥

सवैया इकतीसा—पंच महाव्रत पाले पंच सुमती संभाले, पंच इंद्रि जीति भयो भोगी चित चैनको । षट आवशक क्रिया दर्वित भावित साधे, प्रासुक धरामें एक आसन है सैनको । मंजन न करे केसलुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंत वन पें सुगंध स्वास चैनको ॥ ठाढो करषे अहारलघु भुंजी एकवार, अठाइस मूल गुनधारी जती जैनको ॥ ५१ ॥

दोहा—हिंसा मृषाअदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज ।
किंचित त्यागीअनुव्रती, सबत्यागी मुनिराज ॥ ५२ ॥
चले निरखि भाषे उचित, भषे अदोष अहार ।
लेइ निरखि डारे निरखि, सुमति पंच परकार ॥ ५३ ॥
समता वंदन थुति करन, पडिकमनो सज्झाउ ।
काउसग्ग मुद्राधरन ए षडावसिक भाउ ॥ ५४ ॥

सवैया इकतीसा—थविर कल्पी जिनकल्पी दुविधिमुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहतहैं । दोउ अठाइस मूल गुनके धरैया दोउ, सरव तियागी व्है विरागता गहत हैं ॥ थविर कलपिते जिन्हके शिष्य साषा होइ, बैठके सभामें धर्म देसना कहतहैं । एकाकी सहज जिन कल्पी तपस्वी घोर, उदेकी मरोरसुं परिसह सहतहैं ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—ग्रीषममें धूप थितसीतमें अक पचीत, भूखधरेधीर प्यासे नीरन चहतु है। डंस मसकादिसों न डरें भूमि सैन करें, वध बंध बिथामें अडोल व्है रहतुहै ॥ चर्या दुखभरे तिन फाससों न थरहरें, मल दुरगंधकी गिलान न गहतुहै। रोगनकौ न करें इलाज एसो मुनिराज, वेदनीके उदे ए परीसह सहतुहै ॥ ५६ ॥

कुंडलिया—एते संकट मुनि लहे, चारित मोह उदोत। लज्जा संकुच दुख धरे, नगन दिगंबर होत॥ नगन दिगंबर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवे। त्रियसनमुख दृग रोकि, मान अपमान न बेवे॥ थिर व्है निर्भय रहे, सहे कुबचन जग जेते। भिक्षुक पद संग्रहे, लहे मुनि संकट एते ॥ ५७ ॥

दोहा—अल्प ज्ञान लघुता लखे, मति उतकरष विलोइ।
ज्ञानावरन उदोत मुनि, सहे परीसह दोइ ॥५८॥
सहे अदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत।
रोके उमग अलाभ की, अंतराय के होत ॥५९॥

सवैया इकतीसा—एकादश वेदनीकी चारितमोहकीसात, ज्ञानावरनी की दोइ एक अंतरायकी। दंसन मोहकी एक द्वाविंसति बाधा सब, केई मनसाकी केइ वाकी केई कायकी॥ काहूकों अलप काहूसों वहोत उनी साता, एकहीं समेमें उदे आवे असहायकी। चर्याथित सय्यामांहि एक सीत उसनमांहि, एकदोइहोहि तीनि नांही समुदायकी॥६०॥

दोहा—नानाविध संकटदशा, सहिसाधे शिव पंथ।
थिविरकल्प जिनकल्पधर, दोऊसम निगरंथ॥ ६१ ॥
जो मुनि संगतिमें रहे, थविरकल्पिसोजानि।

एकाकीबाकी दशा, सो जिनकल्प बखानि ॥ ६२ ॥

चौपाई ।

थविरकलपमुनिकछुकसरागी । जिनकलपी महांत विरागी ॥
इति प्रमत्त गुनथानक धरनी । पूरनभईजथारथवरनी॥ ६३ ॥
अब बरनो सत्तम विसरामा । अप्रमत्त गुनथानक नामा ॥
जहां प्रमादक्रिया बिधिनासे । धर्मध्यान थिरतापरगासे६४॥

दोहा—प्रथम करनचारित्रको, जासु अंत पद होइ ।
जहां अहार बिहारनहि, अप्रमत्त है सोइ ॥ ६५ ॥

चौपाई ।

अब बरनो अष्टम गुन थाना । नाम अपूरव करन बखाना ॥
कछुकमोहउपसमकरिराखे । अथवाकिंचितक्षयकरिनाखे६६॥
जो परिनाम भये नहिकबहीं । तिन्हको उदो देखिएजबहीं ॥
तब अष्टम गुनथानक होई । चारितकरन दूसरोसोई ॥६७॥
अब अनवर्त्तिकरन सुनु भाई । जहां भाव थिरताअधिकाई ॥
पूरबभाव चलाचल जेते । सहजअडोलभयेसवतेते॥६८॥
जहांनभाव उलटिअधआवे । सो नवमो गुनथान कहावै ॥
चारित मोहजहां वहुछीजा । सोहेचरनकरनपदतीजा ॥६९॥
कहों दशमगुनथानदुसाखा । जहांसूक्ष्मशिवकीअभिलाषा ॥
सूक्षमलोभदशाजहांलहिये । सूक्षम संपरायसोकहिये ॥७०॥
अब उपसंत मोहगुन थाना । कहों तासु प्रभुता परवाना ॥
जहांमोहउपसमै न भासे । जथाख्यातचारितपरगासे॥७१॥

दोहा—जाहि फरसके जीव गिरि, परै करै गुन रद्द ।
सो एकादसमी दसा, उपसमकी सरहद्द ॥ ७२ ॥

चौपाई।

केवल ज्ञान निकट जहँ आवे। तहां जीव सब मोहषि पावे॥
प्रगटे यथाख्यात परधाना। सो द्वादशम छीनगुनथाना॥७३॥

दोहा—षट सत्तम अट्ठम नवम, दश एकादश बार।
अंतर मुहुरत एक वा, एकसमै थितधार॥ ७४॥
छीन मोह पूरन भयो, करि चूरन चित चाल।
अब सजोग गुनथानकी, बरनों दसा रसाल॥ ७५॥

सवैया इकतीसा—जाकी दुःखदाता घाती चोकरी विनसगई, चोकरी अघाती जरी जेवरी समान है। प्रगटभयो अनंत दंसन अनंत ज्ञान, बीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है॥ जामें आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति ऐसी, एक्यासी चोरासी वा पंचासी परवान है। सो है जिन केवली जगत वासी भगवान, ताकी जो अवस्था सो सजोगी गुन थानहै॥७६॥

सवैया इकतीसा—जो अडोल परजंक मुद्रा धारी सरवथा, अथवा सुकाउसग्ग मुद्रा थिरपालहै। खेत सपरस कर्म प्रकृतिके उदे आए, बिना डग भरे अंतरिक्ष जाकी चाल है॥ जाकी थित पूरव करोड़ि आठबर्ष घाट, अंतरमुहूरति जघन्य जग जालहै। सो है देव अठारह दूषन रहित ताकों,बनारसी कहे मेरी वंदना त्रिकाल है॥ ७७॥

कुंडलिया—दूषन अट्ठारह रहित, सो केवलि संजोग। जनम मरण जाके नहीं, नाहिं निद्रा भय रोग॥ नाहिं निद्रा भय रोग, सोग विस्मय न मोहमति। जराखेद परस्वेद, नांहि मद वैर विषै रति॥ चिंता नांही सनेह, नाहिं जह प्यास न भूखन। थिर समाधि सुख सहित, रहित अट्ठारह दूषन॥ ७८॥

कुंडलिया—बानी जहां निरक्षरी, सप्तधातुमलनांहि। केस रोमनखनहि वढ़े,परमउदारिक मांहि॥ परमउदारिक माहिं जांहि इंद्रिय विकार नसि, जथाख्यात चारित प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि। लोकालोक प्रकास,करन केवल रजधानी॥ सो तेरम गुनथान,जहां अतिशयमयवानी॥७९॥

दोहा—यह सजोग गुनथानकी, रचना कही अनूप।
अब अयोग केवल कथा, कहों यथारथरूप॥८०॥

सवैया इकतीसा—जहां काहू जीवकों असाता उदे साता नांहि, काहूकों असाता नांहि साता उदे पाइये। मन वच कायसों अतीत भयो जहां जीव, जाको जस गीत जग जीत रूप गाइये॥ जामें कर्म प्रकृतिकी सत्ता जागी जिनकीसी, अंतकाल द्वेसमे में सकल खिपाइये। जाकी थिति पंचलघु अक्षर प्रवानसोइ,चौदहो अयोगी गुन थाना ठहराइये॥८१॥

दोहा—चौदह गुनथानक दशा, जगवासी जियभूल।
आश्रव संवर भाव द्वे, बंध मोक्ष के मूल॥८२॥

चौपाई।

आश्रव संबर परनतिजोलों। जगत निवासि चेतनातोलों॥
आश्रव संवरविधि विवहारा। दोऊभवपथ शिवपथधारा॥८३॥
आश्रव रूप बंध उतपाता। संबर ज्ञान मोष पद दाता॥
जा संवरसों आश्रव छीजे। ताकों नमस्कार अबकीजे॥८४॥

सवैया इकतीसा—जगतके प्रानी जीव व्है रह्यो गुमानी ऐसो, आश्रव असुर दुःख दानी महा भीम है। ताको परताप खंडिवेको परगट भयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है॥ जाके परभाव आगे भागे परभाव सब, ना-

गर नवल सुख सागरकी सीम है ॥ संवर को रूपधरे साधे शिवराह ऐसो ज्ञानी पातसाह ताकों मेरी तसलीम है ॥ ८५ ॥

इतिश्रीसमयसार नाटक बालावबोधरूप समाप्त ।

चौपाई ।

भयो ग्रंथ संपूरन भाषा । बरनी गुनथानककी साषा ॥
बरनन और कहांलौं कहिये । जथासकतिकहिचुपव्हेरहियें॥
लिहए ऊरन ग्रंथ उदधिका । ज्योंज्योंकहियेत्योंत्योंअधिका॥
ताते नाटक अगम अपारा । अलपकवीसुरकीमतिधारा८७

दोहा—समयसारनाटक अकथ,कविकीमतिलघुहोइ ।
तातें कहत बनारसी, पूरन कथे न कोइ ॥८८॥

सवैया इकतीसा—जैसे कोउ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीते केही भांति चक्री कटक सों लरनो । जैसें कोउ परविन तारू भुज भारु नर, तरे केसे स्वयंभूरमन सिंधु तरनो ॥ जैसें कोउ उद्दिमी उछाह मनमांहि धरे, करे केसें कारज विधाता को सो करनो । तैसे तुच्छ मती मोरी तामें कविकला थोरी, नाटक अपार में कहां लों याहि वरनो ॥ ८९ ॥

अथ जीव महिमा कथन ।

सवैया इकतीसा—जैसे वटवृक्ष एक तामें फल हैं अनेक फल फल बहू वीज बीज बीज वट है । वटमांहि फल फलमांहि वीज तामे बट कीजे जो विचार तो ततता अघट है ॥ तैसे एक सत्ता में अनंत गुण प्रजा

जा में अनंत नृत्य नृत्य में अनंत ठट है । ठट में अनंत कला कला में अनंत रूप रूपमें अनंत सत्ता ऐसो जीव नट है ॥ ९० ॥

दोहा—ब्रह्म ज्ञान आकाशमें, उडे समति षग होइ ।
जथा सकति उद्दिमधरे, पार न पावे कोइ ॥ ९१ ॥

चौपाई ।

ब्रह्म ज्ञान नभ अंत न पावे । सुमति परोक्ष कहालों धावे ॥
जिहिविधिसमयसारजिनिकीनो।।तिन्हकेनामधरेअवतीनो९२

अथ कवि त्रयी कथन नाम ।

सवैया इकतीसा—कुंद कुंदाचारज प्रथम गाथा वद्ध करे, समेसार नाटक विचारी नाम दयो है । ताही के परंपरा अमृतचंद भये तिन्ह, संसकृत कलस समारि सुख लयो है ॥ प्रगट्यो बनारसी ग्रहस्थ सिरी माल अवकिये हैं कवित्त हिए बोध बीज वयो है । शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव नाटक अनादियों अनादिहि को भयो है ॥ ९३ ॥

अथ कविव्यवस्था कथन ।

चौपाई ।

अथ कछु कहूं यथारथ बानी । सुकवि कुकविकीकथाकहानी॥
प्रथम सुकवी कहावे सोई । परमारथ रसवरने जोई॥९४॥
कलपित वात हिएनहिंआने । गुरु परंपरा रीति बखाने ॥
सत्यारथ सैली नहि छंडे । मृषावादसों प्रीति न मंडे९५॥

दोहा—छंद शब्द अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रवान ।
जो इहि विधि रचनारचे,सोहै सुकवि सुजान ॥ ९६ ॥

चौपाई।

अब सुनु कुकवि कहूं है जैसा। अपराधीहिय अंध अनैसा॥
मृषा भावरसबरने हितसों। नईउकतिनहिंउपजेचितसों९७
ख्याति लाभ पूजा मन आने। परमारथ पथ भेद न जाने॥
बानी जीव एक करि बूझे। जाकोचितजड़ग्रंथिनसूझे९८
बानी लीन भयो जग डोले। बानी ममतात्यागि न बोले॥
है अनादि बानी जगमाहीं। कुकविबातयहसमुझेनाहीं९९

अथ बानी ब्यवस्था कथन।

सवैया इकतीसा—जैसे काहू देस में सलिल धार कारंज की, नदी सों निकसि फिरि नदी में समानी है। नगर में ठौर ठौर फैली रही चहूं ओर, जाके ढिग दहे सोई कहे मेरो पानी है। त्यों ही घट सदन सदन में अनादि ब्रह्म, बदन बदन में अनादिहीं की बाणी है। करम कलोल सों उसास की बयारि बाजे, तासो कहे मेरी धुनि ऐसो मूढ़ प्राणी है॥७००॥

दोहा—ऐसे मूढ़ कुकवि कुधी, गहे मृषा पथ दौर।
रहे मगन अभिमानमें, कहे और की और॥ १॥
वस्तु सरूप लखे नहीं, बाहिज दृष्टि प्रमान।
मृषा बिलास बिलोकके, करे मृषा गुनज्ञान॥ २॥

अथ मृषा गुनज्ञान यथा।

सवैया इकतीसा—मांस की गरांथि कुच कंचन कलस कहे, कहे मुख चंद जो सलेखमाको घरुहै। हाड़के दशन आहि हीरा मोती कहे ताहि, मांस के अधर ओठ बिंब फरु है॥ हाड़ दंभ भुजा कहै कौल नाल

जुधा, हाड़ही के थंभा जंघा कहे रंभा तरु है । योंही झूठी जुगति बनावै औ कहावै कवि एते पर कहे हम सारदाको वरु है ॥ ३ ॥

चौपाई ।

मिथ्या वंत कुकवि जे प्रानी । मिथ्यातिनकी भाषितबानी॥
मिथ्यावंत सुकवि जो होई । वचनप्रवानकरेसबकोई ॥

दोहा—बचन प्रवान करे सुकवि, पुरुष हृदे परवान ।
दोऊ अंग प्रवान जो, सोहै सहज सुजान ॥

अथ नाटक समयसार व्यवस्था कथन ।

चौपाई ।

अब यह बात कहौं है जैसें । नाटक भाषा भयो सु ऐसें॥
कुंद कुंद मुनि मूल उधरता । अमृतचंदटीकाकेकरता ॥६॥
समयसारनाटक सुख दानी । टीका सहितसंसकृतबानी ॥
पंडित पढ़ै दृढ़मती बूझै । अलपमतीकोंअरथनसूझै ॥७॥
पांड़े राजमल्ल जिन धर्मी । समयसार नाटक के मर्मी ॥
तिन्ह गरंथ की टीका कीनी । बालाबोधसुगमकरिदीनी॥८॥
इहि विधिबोध वचनिकाफैली । समौपाइ अध्यातम सैली ॥
प्रकटी जगतमांहि जिनवानी । घरघरनाटक कथा बखानी९
नगर आगरा मांहि विख्याता । कारन पाइ भये बहु ज्ञाता॥
पंच पुरुषअतिनिपुन प्रवीने । निशिदिनज्ञानकथारसभीने१०

दोहा—रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम ।
तृतिय भगौती दास नर, कौंरपालगुनधाम ॥ ११ ॥

धर्मदास ए पंच जन, मिलि बैसें इक ठौर ।
दो० परमारथ चरचा करे, इन्हके कथा न और ॥ १२ ॥

कबहूं नाटकरस सुने, कबहुं और सिद्धांत ।
कबहूं बिंग बनाइके, कहे बोध विरतांत ॥ १३ ॥

अथ विंगयथा ।

दोहा—चितचकारकरु धरमधरु, सुमतिभगौतीदास ।
चतुरभाव थिरता भये, रूपचन्द परगास ॥ १४ ॥
सोहिविधिज्ञान प्रकटभयो, नगरआगरेमांहि ।
देस माहिबिस्तर्‍यो, मृषादेशमहिनांहि ॥ १५ ॥

चौपाई ।

जिनबाणी फैली । लखे न सोजाकी मतिमैली ॥
बोध उतपाता । सोततकाललखे यहबाता ॥ १६
घट अंतर जिन बसे, घटघट अंतर जैन ।
मत मदिराके पानसों, मतवाला समुझैन ॥ १७ ॥

चौपाई ।

बहुत बढ़ाउ कहांलों कीजें । कारज रूप बात कहि लीजें ॥
नगर आगरा मांहि विख्याता । बनारसीनामेलघुज्ञाता ॥ १८ ॥
तामैं कवित कला चतुराई । कृपा करे ए पंचो भाई ।
ए परपंच रहित हिय खोले । ते बनारसीसोंहँसिबोले ।
नाटक समैसार हित जीका । सुगमरूप राजमली
कवित बद्ध रचना जो होई । भाषाग्रंथ पढ़े सबको
तब बनारसी मनमाहि आनी । कीजे तो प्रकटे जिनबा
पुरुष की आज्ञा लीनी । कवितबंधकीरचना
सोरह सें तिरानिवे बीते । आसुमाससितपक्ष वितीते
तिथि तेरसि रविवार प्रवीना । तादिनग्रंथसमापतकीना
दोहा—सुखनिधान सकबंधनर साहि हिकिरान ।

सहससाहिसिरमुकुटमनि,साहजहांसुलतान ॥

जाके राज सुचैनसों, कीनो आगम सार ।

इति भीती व्यापी नही, यह उनको उपगार ॥

अब सबका ठीक कथन ।

सवैया इकतीसा–तीनसें दसोत्तर सोरठा दोहा दोउ, जुगलसें तेतालीस इकतीसा आने हैं । छा चौपाइये सेंतीस तेइसे सवैये, बीस छप्पे अठारह बखाने हैं ॥ सात [illegible] अडिल्ले चारि कुंडली [illegible] ऐसें ॥ सकल सातसें सताईस ठीकठाने हैं । बत्तीस [illegible]ा ॥६॥ श्लोक कीने ताके ऐसे ग्रंथ संख्या सत्रहसें स[illegible]ानी ॥ ठाने हैं ॥ २५ ॥

दोहा–समयसार [illegible],नाटकभाव अनंत ।

सोहै [illegible] में, परमारथ विरतंत ॥ ७२[illegible]

इति परमागम [illegible] नाम सिद्धांत संपूर्णम् श्री रस्तु.